राजकमल कथा साहित्य—५

गंगा मैया

भैरवप्रसाद गुप्त



राजकमल
प्रकाशन प्राइवेट लि:
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना

राजकमल कथा साहित्य—५

गंगा मैया

भैरवप्रसाद गुप्त



राजकमल
प्रकाशन प्राइवेट लिः
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना

एक



उस दिन सुबह गोपीचन्द की विधवा भाभी घर से लापता हो गई, तो टोले-मुहल्ले के लोगों ने मिलकर यही तै किया कि यह बात अपनों में ही दबा दी जाए; किसी को कानों-कान खबर न हो। उन लोगों ने ऐसा किया भी, लेकिन जाने कैसे क्या हुआ कि गोपीचन्द के दरवाजे पर हलके का दारोगा एक पुलिस और चौकीदार के साथ नथुने फुलाये, आँखों में रोष-भरे आ धमका। उस वक्त उन लोगों की हालत कुछ वैसी ही हो गई, जैसी एक चोर की सेंध पर ही पकड़े जाने पर होती है।

दारोगा ने तीखी दृष्टि से इकट्ठे हुए मुहल्ले के लोगों को देखकर, एक ताव खाकर पैंतरा बदला और पुलिस की ओर इशारा करके गरज-कर बोला, "सबके हाथों में हथकड़ियाँ कस दो।" फिर चौकीदार की ओर मुड़कर कहा, "तुम जरा मुखिया को तो खबर कर दो।" कहकर वह आग उगलती आँखों से एक बार लोगों की ओर देखकर चारपाई पर धम्म से बैठ गया। उस वक्त उसकी डंक-सी उठी मूँछें काँप रही थीं।

लोगों को जैसे काठ मार गया हो। सब-के-सब सिर झुकाये हुए काठ के पुतलों की तरह जहाँ-के-तहाँ खड़े रहे। किसी के कण्ठ से बोल न फूटा। फूटता भी कैसे? पुलिस ने बारी-बारी से सबके हाथों में हथ-कड़ियाँ कसकर, उन्हें दारोगा के सामने लाकर जमीन पर बैठा दिया।

एक



उस दिन सुबह गोपीचन्द की विधवा भाभी घर से लापता हो गई, तो टोले-मुहल्ले के लोगों ने मिलकर यही तै किया कि यह बात अपनों में ही दबा दी जाए; किसी को कानों-कान खबर न हो। उन लोगों ने ऐसा किया भी, लेकिन जाने कैसे क्या हुआ कि गोपीचन्द के दरवाजे पर हलके का दारोगा एक पुलिस और चौकीदार के साथ नथुने फुलाये, आँखों में रोष-भरे आ धमका। उस वक्त उन लोगों की हालत कुछ वैसी ही हो गई, जैसी एक चोर की सेंध पर ही पकड़े जाने पर होती है।

दारोगा ने तीखी दृष्टि से इकट्ठे हुए मुहल्ले के लोगों को देखकर, एक ताव खाकर पैंतरा बदला और पुलिस की ओर इशारा करके गरजकर बोला, "सबके हाथों में हथकड़ियाँ कस दो।" फिर चौकीदार की ओर मुड़कर कहा, "तुम जरा मुखिया को तो खबर कर दो।" कहकर वह आग उगलती आँखों से एक बार लोगों की ओर देखकर चारपाई पर धम्म से बैठ गया। उस वक्त उसकी डंक-सी उठी मूँछें काँप रही थीं।

लोगों को जैसे काठ मार गया हो। सब-के-सब सिर झुकाये हुए काठ के पुतलों की तरह जहाँ-के-तहाँ खड़े रहे। किसी के कण्ठ से बोल न फूटा। फूटता भी कैसे? पुलिस ने बारी-बारी से सबके हाथों में हथकड़ियाँ फसकर, उन्हें दारोगा के सामने लाकर जमीन पर बैठा दिया।

गांव के लोगों की भीड़ वहां जमा हो गई। गोपीचन्द की बूढ़ी मां, जो अब तक मसलहतन् चुप्पी साधे हुए थी, दरवाजे पर ही बैठकर जोर-जोर से चीखकर रो पड़ी। पता नहीं कहां से उसके दिल में अपनी विधवा बहू के लिए अचानक मोह-माया उमड़ पड़ी। गोपीचन्द का बूढ़ा बाप, जो बरसों से लगातार गठिया का रोगी होने के कारण चलने-फिरने से कतई मजबूर होकर ओसारे के एक कोने में पड़ा-पड़ा कराहा करता था, बाहर का होहल्ला और औरत की रुलाई सुनकर उठ बैठा और खांसने-खंखारने लगा, कि कोई उस अपाहिज के पास भी आकर बता जाए कि आखिर बात क्या है।

गोपीचन्द गांव का एक मातबर किसान था। भगवान् ने उसे शरीर भी खूब दिया था। तीस साल का वह हैकल जवान अपने सामने किसी को कुछ समझता न था। यही वजह थी कि इतना कुछ होने पर भी जमा हुई भीड़ में से कोई उसके खिलाफ कुछ कहने की हिम्मत न कर रहा था। उसे हथकड़ी पहने, सिर झुकाये, चुपचाप बैठ देखकर लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि क्यों नहीं वही कुछ बोल रहा है। आखिर इसमें उसका दोष ही क्या हो सकता है? किसी विधवा के लिए रजपूतों के इस गांव में यह कोई नयी बात तो है नहीं। कितनी ही विधवाओं के नाम उनके होंठों पर हैं, जो या तो पतित होकर मुंह काला कर गईं। या किसी दिन लापता हो गईं, या किसी कुएं-तालाब की भेंट चढ़ गईं। लेकिन जो भी हो, वह घर की बहू थी, इज्जत थी; इस तरह लापता होकर उसने कुल की मान-मर्यादा पर तो बट्टा लगा ही दिया। शायद इसी लज्जा के दुख के कारण वह इस तरह चुप है। होना भी चाहिए, इज्जतदार आदमी जो ठहरा!

साधारण गरीब आदमियों से उलझना पुलिस वाले नापसन्द करते हैं। बहुत हुआ, तो इस तरह की वारदातों पर एकाध थप्पड़ लगा दिया, कुछ डांट-फटकार दिया, या गाली-गुफ्ता की एक बौछार छोड़ दी। वे जानते हैं कि उनसे उलझना अपना वक्त बरबाद करना

है; हाथ तो कुछ लगेगा नहीं . . . [illegible]
पर क्यों लें ? जान-बूझकर साधारण-से-साधारण बहाने पर भी उलझना तो उन्हें पैसे वाले इज्जतदारों से पसन्द है। दारोगाजी ने गोपीचन्द के इस मामले में जो इतनी फुरती, परेशानी और कर्त्तव्यपरायणता का परिचय दिया, तो उन्हें किसी कुत्ते ने तो काटा नहीं था !

मुखिया के आते ही दारोगा आग के भभूके की तरह फट पड़ा। फिर उसने क्या-क्या कहा, कैसी-कैसी आँखें दिखायीं, क्या-क्या पैंतरे बदले और क्या-कुछ कर डालने की धमकियाँ नहीं दीं, बल्कि कर दिखाने के फतवे भी दे डाले, इसका कोई हिसाब नहीं। मुखिया होंठों ही में मुस्कराया, फिर गम्भीर होकर उसने वह सब पूरा कर डाला जो दारोगा ने भूल से अधूरा छोड़ दिया था। फिर गोपीचन्द और उसके मुहल्ले के अपराधी लोगों को कुछ खरी-खोटी सुनाकर आप ही उनका वकील भी बन गया और उनकी ओर से माफी माँगने के साथ-साथ कुछ पान-फूल भेंट करने की बात चलाकर कहा, "दारोगाजी, इस गोपीचन्द ने तो एक बार जेल की हवा खाकर भी जैसे कुछ न सीखा। यह फिर जेल जाएगा, दारोगाजी, आखिर हम कब तक इसे बचाये रखेंगे ? इसे यह भी मालूम नहीं कि एक बार दाग लग जाने के बाद फिर गवाही-शहादत की भी जरूरत नहीं रह जाती।" फिर दूसरे लोगों की ओर हाथ उठाकर कहा, "और इनको मैं कहता हूँ कि इसके साथ-साथ इन्हें भी बड़े घर की सैर का शौक चर्राया है ?"

इस बीच दारोगा अपना नया दाँव फेंकने के लिए अपनी मुद्रा उसके अनुकूल बनाने में काफी सचेष्ट रहा। मुखिया के चुप होते ही बरस पड़ा, "नहीं साहब, नहीं। ऐसी-वैसी कोई बात होती तो कोई बात न थी। मगर यह संगीन मामला है। आखिर मुझे भी तो किसी के सामने जवाबदेह होना पड़ता है," कहकर वह ऐंठ गया।

मुखिया समझ गया। 'खग जाने खग ही के भाखा'। हाथ बढ़ाकर उसने दारोगा का हाथ पकड़ा और उसे लेकर एक ओर हो गया।

गांव के लोगों की भीड़ वहां जमा हो गई। गोपीचन्द की बूढ़ी मां, जो अब तक मसलहतन् चुप्पी साधे हुए थी, दरवाजे पर ही बैठकर ज़ोर-ज़ोर से चीखकर रो पड़ी। पता नहीं कहां से उसके दिल में अपनी विधवा बहू के लिए अचानक मोह-माया उमड़ पड़ी। गोपीचन्द का बूढ़ा बाप, जो बरसों से लगातार गठिया का रोगी होने के कारण चलने-फिरने से कतई मजबूर होकर ओसारे के एक कोने में पड़ा-पड़ा कराहा करता था, बाहर का होहल्ला और औरत की रुलाई सुनकर उठ बैठा और खांसने-खंखारने लगा, कि कोई उस अपाहिज के पास भी आकर बता जाए कि आखिर बात क्या है।

गोपीचन्द गांव का एक मातबर किसान था। भगवान् ने उसे शरीर भी खूब दिया था। तीस साल का वह हैकल जवान अपने सामने किसी को कुछ समझता न था। यही वजह थी कि इतना कुछ होने पर भी जमा हुई भीड़ में से कोई उसके खिलाफ कुछ कहने की हिम्मत न कर रहा था। उसे हथकड़ी पहने, सिर झुकाये, चुपचाप बैठे देखकर लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि क्यों नहीं वही कुछ बोल रहा है। आखिर इसमें उसका दोष ही क्या हो सकता है ? किसी विधवा के लिए रजपूतों के इस गांव में यह कोई नयी बात तो है नहीं। कितनी ही विधवाओं के नाम उनके होंठों पर हैं, जो या तो पतित होकर मुंह काला कर गईं। या किसी दिन लापता हो गईं, या किसी कुएं-तालाब की भेंट चढ़ गईं। लेकिन जो भी हो, वह घर की बहू थी, इज्जत थी; इस तरह लापता होकर उसने कुल की मान-मर्यादा पर तो बट्टा लगा ही दिया। शायद इसी लज्जा के दुख के कारण वह इस तरह चुप है। होना भी चाहिए, इज्जतदार आदमी जो ठहरा !

साधारण गरीब आदमियों से उलझना पुलिस वाले नापसन्द करते हैं। बहुत हुआ, तो इस तरह की वारदातों पर एकाध थप्पड़ लगा दिया, कुछ डांट-फटकार दिया, या गाली-गुफ्ता की एक बौछार छोड़ दी। वे जानते हैं कि उनसे उलझना अपना वक्त बरबाद करना

है; हाथ तो कुछ लगेगा नहीं। फिर गुनाह-बेलज्जत का अजाब सिर पर क्यों लें ? जान-बूझकर साधारण-से-साधारण बहाने पर भी उलझना तो उन्हें पैसे वाले इज्जतदारों से पसन्द है। दारोगाजी ने गोपीचन्द के इस मामले में जो इतनी फुरती, परेशानी और कर्त्तव्यपरायणता का परिचय दिया, तो उन्हें किसी कुत्ते ने तो काटा नहीं था !

मुखिया के आते ही दारोगा आग के भभूके की तरह फट पड़ा। फिर उसने क्या-क्या कहा, कैसी-कैसी आँखें दिखायीं, क्या-क्या पैंतरे बदले और क्या-कुछ कर डालने की धमकियाँ नहीं दीं, बल्कि कर दिखाने के फतवे भी दे डाले, इसका कोई हिसाब नहीं। मुखिया होंठों ही में मुस्कराया, फिर गम्भीर होकर उसने वह सब पूरा कर डाला जो दारोगा ने भूल से अधूरा छोड़ दिया था। फिर गोपीचन्द और उसके मुहल्ले के अपराधी लोगों को कुछ खरी-खोटी सुनाकर आप ही उनका वकील भी बन गया और उनकी ओर से माफी माँगने के साथ-साथ कुछ पान-फूल भेंट करने की बात चलाकर कहा, "दारोगाजी, इस गोपीचन्द ने तो एक बार जेल की हवा खाकर भी जैसे कुछ न सीखा। यह फिर जेल जाएगा, दारोगाजी, आखिर हम कब तक इसे बचाये रखेंगे ? इसे यह भी मालूम नहीं कि एक बार दाग लग जाने के बाद फिर गवाही-शहादत की भी जरूरत नहीं रह जाती।" फिर दूसरे लोगों की ओर हाथ उठाकर कहा, "और इनको मैं कहता हूँ कि इसके साथ-साथ इन्हें भी बड़े घर की सैर का शौक चर्राया है ?"

इस बीच दारोगा अपना नया दाँव फेंकने के लिए अपनी मुद्रा उनके अनुकूल बनाने में काफी सचेष्ट रहा। मुखिया के चुप होते ही बरस पड़ा, "नहीं साहब, नहीं। ऐसी-वैसी कोई बात होती तो कोई बात न थी। मगर यह संगीन मामला है। आखिर मुझे भी तो किसी के सामने जवाबदेह होना पड़ता है," कहकर वह ऐंठ गया।

मुखिया समझ गया। 'खग जाने खग ही के भाखा'। हाथ बढ़ाकर उसने दारोगा का हाथ पकड़ा और उसे लेकर एक ओर हो गया।

दस मिनट के बाद वे लौटे, तो दारोगा ने नोट-बुक और पेंसिल जेब से निकालकर कहा, "गोपीचन्द, तुम अपना बयान दो।" फिर भीड़ की ओर देखकर पुलिस को इशारा किया।

भीड़ भगा दी गई। फिर गोपीचन्द के बयान दिये बिना ही दारोगा ने आप ही सब खानापूरियाँ कर लीं। वारदात में लापता विधवा के एक हाथ में रस्सी और दूसरे हाथ में घड़ा थमाकर उसे कुएँ पर भेज दिया गया और उसका पैर काई-जमी कुएँ की जगत पर फिसलाकर, कुएँ में गिराकर, उसे मार डाला गया। इधर गोपीचन्द की थैली का मुँह खुला, उधर कानून का मुँह बन्द हो गया। कहानी खतम हो गई।

गांव में तरह-तरह की बातें उठीं। फिर 'बहुत-सी खूबियाँ थीं मरने वाले में' के अनुसार लोगों ने उसके विषय में कोई चर्चा करके उसकी आत्मा को व्यर्थ में कष्ट पहुँचाना अनुचित समझकर, अपने मुँह बन्द कर लिए। बात आयी-गयी हो गई। लेकिन······

दो

०

गोपीचन्द दो भाई थे। बड़े भाई मानिकचन्द और उसकी उम्र में मुश्किल से दो साल का फर्क था। पिता दो बैलों की खेती कराते थे। घर की भैंस थी। मानिकचन्द और गोपीचन्द भैंस का दूध पीते और घण्टों अखाड़े में जमे रहते। पिता ने उन्हें साँड़ों की तरह आज़ाद और बेफिक्र छोड़ दिया था। खेलने-खाने के यही तो दिन हैं; फिर जिन्दगी

का जुआ कन्धे पर पड़ने के बाद किसे फुरसत मिलती है शरीर बनाने की ? इसी वक्त की बनी देह तो जिन्दगी-भर काम आएगी ।

उगते हुए जवानों को आज़ादी, बेफिक्री, दूध और अखाड़े की कसरत जो मिली, तो उनकी देह साँचे में ढलने लगी । उनकी जोड़ी जब अखाड़े में छूटती तो लोग तमाशा देखते और बड़ाई करते न थकते । जब अखाड़े से अपने सुडौल, सुन्दर शरीर में धूल रमाये वे शेर की तरह मस्त चाल से झूमते हुए घर लौटते, तो अपने राम-लछमन की जोड़ी देखकर माँ-बाप की छाती फूल उठती; चेहरा खुशी के मारे तमतमा उठता और उनकी आँखों में जैसे गर्व के दो दीप जल उठते । माँ उनकी बलैयाँ लेती; बाप मन-ही-मन उनके लिए जाने कितनी शुभ कामनाएँ करते ।

बड़ाई जितनी मधुर है, उसका चस्का लग जाना उतना ही बुरा है । यह आदमी को अन्धा बना देती है । दोनों भाइयों के गढ़े-बने शरीर और उनके बल की बड़ाई गाँव में और आस-पास जो शुरू हुई, तो उन पर जैसे एक नशा-सा छा गया । खेल-खेल में जो कसरत उन्होंने शुरू की थी, वह धीरे-धीरे शौक बन गई । फिर तो जैसे शरीर बनाने और बल बढ़ाने की एक जबरदस्त धुन उनके सिर पर चढ़ गई । माँ-बाप और गाँव के लोगों का बढ़ावा मिला । मानिक और गोपी की जोड़ी गाँव का नाम जवार में उजागर करेगी । और सचमुच मानिक और गोपी गाँव की शोहरत में चार चाँद लगाने को जी-जान से कटिबद्ध हो गए । बादाम घोटे जाने लगे, बकरे कटने लगे, घी में तर हलुए की सुगन्ध मुहल्ले में सुबह-शाम छायी रहने लगी । पिता अपनी गाढ़ी कमाई उन पर न्योछावर करने लगे । एक और दुधारू भैंस खूँटे पर आ बँधी ।

नतीजा यह हुआ कि उम्र से दुगुना और तिगुना उनका शरीर और बल बढ़ने लगा । और पच्चीस का माथा छूते-छूते तो उनका शरीर और बल खासा हाथी की तरह हो गया । अब जो वे अखाड़े में छूटते तो

उनकी साँसों की फुफकार की आवाज़ बीघों तक सुनाई पड़ती, जैसे दो साँड़ हुँकड़ रहे हों। जहाँ उनका पैर पड़ जाता अखाड़े की ज़मीन बित्ता-बित्ता-भर धँस जाती। और जो कोई अपनी जाँघ या बाजू पर ताल ठोंकता, तो मालूम होता जैसे कोई बादल का टुकड़ा दूसरे बादल के टुकड़े से टकराकर गरज उठा हो। घण्टों वे दो पहाड़ों की तरह एक-दूसरे से टक्कर लेते और अखाड़े में जमे रहते। अखाड़े की मिट्टी खुद जाती, पसीने की धारें बहने लगतीं, तब कहीं वे बाहर निकलने का नाम लेते। बाहर आकर वे हाथियों की तरह पसर जाते और उनके दो-दो तीन-तीन शागिर्द हाथों में मिट्टी ले-लेकर उनके शरीर से बहती पसीने की धारों को मल-मलकर घण्टों में सुखा पाते।

अब हाल यह था कि शरीर बेकाबू हुआ जा रहा था; अपार शक्ति की किरणें उनके रोम-रोम से फूट रही थीं; मोटी-मोटी रगें सीमा तक स्वस्थ रक्त से फूल-फूलकर अब फटी, अब फटी-सी हो रही थीं; और सुर्ख चेहरे से जैसे खून टपका पड़ रहा हो। ऊँचा माथा, रोबीली, खून उगलती-सी आँखें, बाँकी मूँछें, सुडौल गरदन, उन्नत, चौड़ी-चकली, चट्टान की तरह छाती, मांसल भुजाएँ, पुष्ट रानें, गठीली पिण्डलियाँ लिये जोम से ज़रा शरीर को भाँजते, शक्ति और गर्व के नशे में मस्त हाथी की तरह झूमते जब वे चलते, तो लगता जैसे उनके हर कदम के साथ एक ज़लज़ला चला आ रहा है, उनकी हर जुम्बिश पर दिशाएँ झुकी जा रही हैं, उनकी हर चितवन में ताकत की बिजलियाँ कौंध उठती हैं। माँ-बाप ने जब उन्हें ऐसी उन्नत अवस्था में देखा, तो गर्व और खुशी से फूले न समाए। गाँव वालों ने देखा तो आँखों में खुशी की चमक और होंठों पर सफलता की मुस्कराहट लाकर कहा, "हाँ, अब वह वक्त आ गया जिसका इन्तज़ार हमें बरसों से था। अब देखें, कौन माई का लाल हमारे गाँव के इन शेरों के जोड़ के सामने से सिर उठाकर चला जाता है!"

बाप से राय ली गई, तो उन्होंने लापरवाही से कहा, "अरे, अभी

तो ये बच्चे हैं।"

लोगों ने समझाया, "तुम बाप हो। बाप के लिए तो बेटा बूढ़ा भी हो जाए, तब भी बच्चा ही रहता है। मगर सच तो यह है कि चढ़ती जवानी की यही उम्र कुछ कर गुजरने की होती है। अब वक्त आ गया है कि इनके बल, जोर और कुव्वत का डंका गाँव की हद में ही बँधा न रहकर पूरे जवार, तहसील और जिले में ही न बजे, बल्कि पूरे सूबे और देश में भी इनका नाम चमक उठे। तुम अगर इस समय किसी तरह की कमजोरी दिखाओगे, तो इनके हौसले पस्त हो जाएँगे। तुम इन्हें खुशी से आज्ञा दो कि ये अपने नाम और कुल के मान पर चार चाँद लगाने के साथ ही गाँव का भी नाम उजागर करें।"

बाप को अपने बेटों की ताकत का अन्दाजा न हो, ऐसी बात न थी। लेकिन उनके पितृ-हृदय में जहाँ बेटों को यशस्वी देखने की प्रबल कामना और उमंग थी, वहीं ममता और स्नेह की विपुलता के कारण जरा शंका और भय भी था कि कहीं···। लोगों की बात सुनकर उनके होंठों पर एक विराग की-सी मुस्कराहट फैल गई, जैसे उन्हें अपने नाम और मान की कतई फिक्र न हो। नाम, मान, यश और वैभव की लालसा किसे नहीं होती! लेकिन यह लालसा दूसरों पर प्रकट करके इन दुर्लभ प्राप्तियों की महानता को कम करके, कोई बुद्धिमान् अपने को लोभी घोषित करके हास्यास्पद नहीं बनना चाहता। बाप अनुभवी आदमी थे। उन्होंने दिल की उठती हुई उमंगों को दबाकर एक विरक्त की तरह कहा, "अगर तुम लोग ऐसा ही समझते हो, तो मैं इसमें किसी तरह की बाधा डालना नहीं चाहता। आखिर उन पर गाँव का भी तो वही अधिकार है, जो मेरा है। गाँव की ही मिट्टी, पानी, हवा से तो उनकी यह देह बनी है। तुम लोग उन्हींसे कहो। अब तक वे हर तरह से आजाद रहे। आज भी वे जैसा चाहें, करने को आजाद हैं।"

लोग सुन्द-उपसुन्द दोनों भाइयों के पास पहुँचे और उनके बाप की अनुमति की बात कहकर उन्होंने कहा, "अब तुम बताओ, तुममें कौन

पहले कुश्ती में उतरना चाहता है।"

वे दोनों अखाड़े में एक-दूसरे के दुश्मन बनकर उतरते थे, लेकिन अखाड़े के बाहर उनका आपसी व्यवहार इतना प्रेम-भरा था कि बस राम-लक्ष्मण का ही दृष्टान्त दिया जा सकता था। गोपी ने कहा, "मेरे रहते भैया को कुश्ती में नहीं उतरना पड़ेगा। बाबूजी और भैया की आज्ञा और आशीर्वाद का बल पाने का हक मुझे ही तो भगवान् की ओर से मिला है।"

मानिक गोपी से उम्र में बीस था, लेकिन शरीर और ताकत में गोपी मानिक से कहीं बीस था, यह खुद मानिक भी जानता था और गाँव के लोग भी। एक तरह से गोपी के पहले उतरने की बात से लोगों को भी खुशी ही हुई।

अच्छी साइत देखकर, ब्राह्मण और नाई के हाथ ललकार का पान जवार के नामी-गरामी पहलवानों के पास भेज दिया गया। इधर गोपी की तैयारी और जोर पकड़ गई।

मानिक और गोपी के बारे में जवार के पहलवान बहुत-कुछ सुन ही न चुके थे, बल्कि उन्हें अपनी आँखों से देख भी चुके थे। उनमें से किसी को भी उससे भिड़ने की हिम्मत न रह गई थी। ब्राह्मण और नाई एक-एक कर सभी पहलवानों के यहाँ पहुँचे। लेकिन सब कोई-न-कोई बहाना करके टाल गए। आखिर वे जवार के सबसे नामी बूढ़े जोखू पहलवान के अखाड़े में पहुँचे। जोखू को जब उनसे मालूम हुआ कि जवार का कोई भी पहलवान पान को हाथ लगाने की हिम्मत न कर सका, तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। ज्यादातर नामी पहलवान जोखू का लोहा मानने वाले या उसके शागिर्द थे। अपनी जवानी के दिनों में उसने एक बार जो अपना सिक्का जमा लिया था, वह आज के दिन तक वैसा ही बना रहा। किसी ने कभी भी उससे भिड़ने की हिम्मत न की थी। उसीकी तूती जवार में आज तक बोलती रही। आज अब वे जवानी के दिन न रहे। जोखू बूढ़ा हो चुका था। वह जानता था कि

गोपी के मुकाबले में उतरकर वह अपनी उम्र-भर की सारी कमाई कीर्ति हमेशा के लिए खो देगा। लेकिन अब चारा ही क्या था? ब्राह्मण और नाई सब नामी-गरामी पहलवानों के यहाँ से, श्यामकर्ण घोड़े की तरह, गोपी की कीर्ति का फरहरा फहराते हुए चले आए थे। जोमू के यहाँ से भी अगर वे उसी तरह चले जाएँगे, तो लोग क्या समझेंगे? बूढ़ा शेर इस बेइज्जती की बात सोचकर तमतमा उठा। उसकी मरदानगी को यह कैसे गवारा होता कि कोई ललकारकर उसके सामने से निकल जाए? जोमू बूढ़ा हो गया है। अब वह शरीर और बल नहीं रह गया। फिर भी पुराने खून का वह मर्द है, सच्चा मर्द। यों ललकार स्वीकार किये बिना ही कायरों की तरह पहले ही कैसे सिर झुका देता? उसने पान उठा लिया और गरजकर, बजरंगबली की जय बोलकर उसे मुँह में डाल लिया।

लोगों ने जब यह सुना, तो अचरज करने के साथ ही वे बूढ़े जोमू की मरदानगी और हिम्मत की दाद दिये बिना न रह सके। उनके मुँह से सहसा ही निकल पड़ा कि जवार के जवान पहलवानों को चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। गोपी ने जब यह सुना तो जैसे छोटा हो गया। अपने बाप की उम्र के पहलवान से लड़ना उसे कुछ जचा नहीं। वह तो अपनी उम्र और जोड़ के किसी पट्ठे से भिड़ना चाहता था। लेकिन अब हो ही क्या सकता था? एक बार बद कर कुछ और किया ही कैसे जा सकता था?

नियत तिथि पर गाँव का अखाड़ा बन्दनवार, अशोक के पत्तों के फाटकों और रंग-बिरंगी कागज की झण्डियों से खूब सजाया गया। वक्त के बहुत पहले ही से जवार और दूर-दूर के गाँवों के लोगों की भीड़ जमने लगी।

माँ-बाप के आशीर्वाद लेकर, फूलों के हारों से लदे हुए दोनों भाई

बाजे-गाजे के साथ अपने गाँव के लोगों की भीड़ के आगे-आगे अखाड़े की ओर चल पड़े। भीड़ उमंग में बावली हो-होकर बजरंगबली की जय-जयकार से आसमान को गुंजा रही थी, लेकिन गोपी के दिल में वह खुशी, उत्साह और उमंग न थी, जिसकी उसने कभी ऐसा मौका आने पर कल्पना की थी। फिर भी मन की बात दबाकर वह ऊपरी जोश से भीड़ की खुशी में हिस्सा ले रहा था।

अखाड़े पर दो ओर से एक ही वक्त गोपी और जोखू के दल पहुँचे। दोनों दलों ने जय-जयकार की। मारू बाजे जोर-जोर से बजने लगे। वातावरण के कण-कण में वीर रस का संचार हो रहा था। भीड़ की आँखों में खुशी और उत्सुकता चमक रही थी। सब-के-सब अखाड़े के पास ही पिले पड़ रहे थे। गोपी और जोखू के अभिभावक उन्हें चारों ओर से घेरे शाबाशी के साथ ही तरह-तरह की गुर की बातों का ज़िक्र कर रहे थे। कोई बुज़ुर्ग पीठ ठोंककर उत्साह बढ़ा रहा था, तो कोई हम-उम्र हाथ मिलाकर विजय की कामना कर रहा था और सब छोटे शागिर्द पाँव छूकर सफलता के लिए भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे।

अखाड़े में कूदने के पहले मानिक ने गोपी के कान के पास मुँह ले जाकर चुपके-चुपके कहा, "बूढ़ा पुराना खुर्राट उस्ताद है। ज़्यादा मौका न देना। हाथ मिलाते ही, पलक मारते ही···समझे। वरना कहीं गुँथ गया तो फिर घण्टों की छुट्टी हो जाएगी। फिर हार भी खा आएगा, तो कहने को रह जाएगा कि एक तो बूढ़े से लड़ना ही गोपी-जैसे जवान की ज़्यादती थी, दूसरे लड़ा भी तो कहीं घण्टों में मिस-मिसकर···सो यह कहने का मौका किसी को न मिले। बस, चटपट······"

दो ओर से कूदकर वे अखाड़े में उतरे। दोनों ओर से जोर-जोर की जयकार हुई। मारू बाजे और जोर से बज उठे। भीड़ की आँखों की उत्सुकता की चमक में पुतलियों की थरहिट बढ़ गई।

दोनों ने झुककर अखाड़े की मिट्टी चुटकी से उठाकर, माथे से

लगाकर अपने गुरु का स्मरण किया। फिर हाथ मिलाने को एक-दूसरे की आँखों-से-आँखें मिलाये आगे बढ़े। हाथ बढ़े। अंगुलियाँ छुईं कि सहसा जैसे एक बिजली-सी कौंध गई। गोपी ने न जाने कैसे दाहिना पैर जोमू की कोख में मारा कि बूढ़ा एक चीख के साथ हवा में उछला, हवा ही में जैसे एक आह की आवाज आयी, और दूसरे ही क्षण अखाड़े की मेड़ पर पहाड़ के एक टुकड़े की तरह वह भहराकर गिर पड़ा। भीड़ में सन्नाटा छा गया। मारू बाजा थम गया। उसके दल के लोग आशंका से काँपते हुए उसकी ओर बढ़े। झुककर देखा तो वह ठण्डा पड़ चुका था। अब क्या था, उनकी आँखों में क्रोध के शोले भड़क उठे। "यह अन्याय है···यह धोखा है···हाथ मिलाने के पहले ही गोपी ने जोमू उस्ताद को मार डाला···कुश्ती के कायदे को इस कायर ने तोड़ा है। हम उसे जीता न छोड़ेंगे!" इत्यादि क्रोध और क्षोभ में चीखती आवाजें भीड़ से उठ गईं। गोपी ठक खड़ा था। उसकी समझ में कुछ न आ रहा था कि अचानक यह क्या हो गया। लेकिन अब समझने-बूझने का मौका ही कहाँ था? जब जोमू के दल ने लाठियाँ उठा लीं तो दूसरा दल चुप कैसे रहता? लाठियाँ पट-पट बजने लगीं। तमाशबीनों में भगदड़ मच गई। कइयों के सिर से खून की धारें बह चलीं, कई हाथ-पैर में चोट खाकर गिरकर तड़पने लगे। आखिर जब जोमू के दल वालों ने देखा कि उनका पल्ला कमजोर पड़ रहा है, तो उनमें से कइयों ने खुद बीच-बचाव का शोर उठाया और अपने लोगों को ही रोकने लगे। गोपी के अपने गाँव का मामला था। जोमू के दल वाले पराये गाँव के थे। अगर रोक-थाम की उन्हें न सूझती, तो एक आदमी भी बचकर न जा पाता। लाठियाँ धीरे-धीरे थम गईं। फिर कचहरी में समझ लेने की धमकी देकर वे चले गए।

ऐसी वारदात को लेकर कचहरी दौड़ना स्वयं उनके लिए कोई

ठा की बात नहीं थी। इससे इज्जत घटती ही, बढ़ती नहीं। जोखू
वान की इस तरह जो मौत हो गई थी, इससे जवार में क्या उनकी
किरकिरी हुई थी, जो वे भरी कचहरी में इस बदनामी का ढोल
टते। हलके के दारोगा ने पहले जरूर इस्तगासा दाखिल करने पर
र दिया, लेकिन गोपी के दल ने जैसे ही उसकी जेब गरम कर दी, वह
ो चुप्पी साध गया।

जो भी हो इस वारदात का इतना नतीजा जरूर हुआ कि जोखू के
गाँव वाले हमेशा के लिए गोपी और उसके खानदान के प्राणलेवा शत्रु
बन गए। उनके दिलों में एक घाव बन गया। गोपी के दिल पर जोखू
की इस तरह हुई मौत का इतना असर पड़ा कि उसने हमेशा के लिए
लँगोट उतार फेंका। मानिक और गाँव के लोगों ने उसे बहुत समझाया,
लेकिन वह टस-से-मस न हुआ। वह अब हर तरह से घर-गिरस्ती के
कामों में बाप की मदद करने लगा।

तीन

०

धीरे-धीरे ये बातें पुरानी पड़ गईं। बाप को अब अपने बेटों की शा
की फिक्र हुई। इसके पहले भी कई जगहों से रिश्ते आये थे, लेकि
उन्होंने 'अभी क्या जल्दी है,' कहकर टाल दिया था। अबकी संयोग
एक ऐसा रिश्ता आ गया कि उनकी खुशी की हद न रही। सीता
उर्मिला की तरह दो प्रेममयी, सगी, प्रतिष्ठित कुल की सुशील ब
की एक ही साथ दोनों भाइयों से सम्बन्ध की बात चली।

बेटे थे वैसी ही बहुएँ मिलने जा रही थीं। माँ तो वर्षों से बहुओं का मुँह देखने को तड़प रही थी। इस रिश्ते की चर्चा जिसने भी सुनी उसीने बाप को राय दी कि "बस अब कुछ सोचने-समझने की बात नहीं। यह भगवान् की किरिपा है कि ऐसी बहुएँ मिल रही हैं। एक ही साथ जैसे दोनों बेटों के सभी संस्कार हुए, वैसे ही एक ही साथ ब्याह भी जितनी जल्द हो जाए, अच्छा है।"

खूब धूम-धाम से ब्याह हो गया। दो-दो सुशील, सुन्दर बहुएँ घर में एक साथ क्या उतरी, घर खम-खम भर गया। माँ-बाप की खुशी का ठिकाना न रहा। जब उन्होंने देखा कि सचमुच बहुएँ उससे कहीं बढ़-चढ़ कर हैं, जैसा कि उन्होंने सुना था तो उनके सन्तोष-सुख के क्या कहने!

गोपी प्यारी पत्नी के साथ ही प्यारी भाभी पाकर निहाल हो गया। उसके लिए घर का संसार इतना मोहक, इतना सुखकर हो उठा कि वह बस घर में ही रमकर रह गया। बाहरी संसार से उसने एक तरह से नाता ही तोड़ लिया। वह एक धुन का आदमी था। पहले उसे सांसारिक बातों से, अपना शरीर बनाने और कसरत की धुन में, कोई दिलचस्पी ही न थी। अब एक छूटा, तो दूसरे से वह इस तरह चिपट गया कि लोग देखते और ताज्जुब करते। लोकाचार के बन्धनों के कारण उसे अपनी बीवी से मिलने-जुलने की उतनी आजादी न थी, जितनी भाभी से। भाभी से वह खुलकर मिलता और हँसी-मजाक के ठहाकों से घर को गुँजा देता। माँ-बाप का दिल घर के इस सदा हँसते वातावरण को देखकर खुशी से झूम उठता। मानक को इन बातों में खुलकर हिस्सा लेने की आजादी न थी, फिर भी वह गोपी और भाभी का स्नेहमय व्यवहार देखकर मन-ही-मन हर्ष-विभोर हो उठता। भाई-भाई का प्रेम, बहन-बहन का प्रेम, देवर-भाभी का प्रेम, पुत्र, माता-पिता वधुओं का प्रेम! ऐसा लगता था, जैसे चौबीस घण्टे उस घर में अमृत की वर्षा होती है—छक-छककर, नहा-नहाकर घर का प्रत्येक प्राणी आनन्द-

प्रतिष्ठा की बात नहीं थी। इससे इज्जत घटती ही, बढ़ती नहीं। जोखू पहलवान की इस तरह जो मौत हो गई थी, इससे जवार में क्या उनकी कम किरकिरी हुई थी, जो वे भरी कचहरी में इस बदनामी का ढोल पीटते। हलके के दारोगा ने पहले जरूर इस्तगासा दाखिल करने पर जोर दिया, लेकिन गोपी के दल ने जैसे ही उसकी जेब गरम कर दी, वह भी चुप्पी साध गया।

जो भी हो इस वारदात का इतना नतीजा जरूर हुआ कि जोखू के गाँव वाले हमेशा के लिए गोपी और उसके खानदान के प्राणलेवा शत्रु बन गए। उनके दिलों में एक घाव बन गया। गोपी के दिल पर जोखू की इस तरह हुई मौत का इतना असर पड़ा कि उसने हमेशा के लिए लँगोट उतार फेंका। मानिक और गाँव के लोगों ने उसे बहुत समझाया, लेकिन वह टस-से-मस न हुआ। वह अब हर तरह से घर-गिरस्ती के कामों में बाप की मदद करने लगा।

तीन

०

धीरे-धीरे वे बातें पुरानी पड़ गईं। बाप को अब अपने बेटों की शादी की फिक्र हुई। इसके पहले भी कई जगहों से रिश्ते आये थे, लेकिन उन्होंने 'अभी क्या जल्दी है,' कहकर टाल दिया था। अबकी संयोग से एक ऐसा रिश्ता आ गया कि उनकी खुशी की हद न रही। सीता और उर्मिला की तरह दो प्रेममयी, सगी, प्रतिष्ठित कुल की सुशील बहनों की एक ही साथ दोनों भाइयों से सम्बन्ध की बात चली। जैसे

बेटे थे वैसी ही बहुएँ मिलने जा रही थीं। माँ तो वर्षों से बहुओं का मुंह देखने को तड़प रही थी। इस रिश्ते की चर्चा जिसने भी सुनी उसीने बाप को राय दी कि "बस अब कुछ सोचने-समझने की बात नहीं। यह भगवान् की किरिपा है कि ऐसी बहुएँ मिल रही हैं। एक ही साथ जैसे दोनों बेटों के सभी संस्कार हुए, वैसे ही एक ही साथ ब्याह भी जितनी जल्द हो जाए, अच्छा है।"

खूब धूम-धाम से ब्याह हो गया। दो-दो सुडौल, सुन्दर बहुएँ घर में एक साथ क्या उतरीं, घर छम-छम भर गया। माँ-बाप की खुशी का ठिकाना न रहा। जब उन्होंने देखा कि सचमुच बहुएँ उससे कहीं बढ़-चढ़ कर हैं, जैसा कि उन्होंने सुना था तो उनके सन्तोष-सुख के क्या कहने!

गोपी प्यारी पत्नी के साथ ही प्यारी भाभी पाकर निहाल हो गया। उसके लिए घर का संसार इतना मोहक, इतना सुखकर हो उठा कि वह बस घर में ही रमकर रह गया। बाहरी संसार से उसने एक तरह से नाता ही तोड़ लिया। वह एक धुन का आदमी था। पहले उसे सांसारिक बातों से, अपना शरीर बनाने और कसरत की धुन में, कोई दिलचस्पी ही न थी। अब एक छूटा, तो दूसरे से वह इस तरह चिपट गया कि लोग देखते और ताज्जुब करते। लोकाचार के बन्धनों के कारण उसे अपनी बीवी से मिलने-जुलने की उतनी आज़ादी न थी, जितनी भाभी से। भाभी से वह खुलकर मिलता और हँसी-मज़ाक के ठहाकों से घर को गुंजा देता। माँ-बाप का दिल घर के इस सदा हँसते वातावरण को देखकर खुशी से झूम उठता। मानक को इन बातों में खुलकर हिस्सा लेने की आज़ादी न थी, फिर भी वह गोपी और भाभी का स्नेहमय व्यवहार देखकर मन-ही-मन हर्ष-विभोर हो उठता। भाई-भाई का प्रेम, बहन-बहन का प्रेम, देवर-भाभी का प्रेम, पुत्र, माता-पिता वधुओं का प्रेम! ऐसा लगता था, जैसे चौबीस घण्टे उस घर में अमृत की वर्षा होती है—छक-छककर, नहा-नहाकर घर का प्रत्येक प्राणी आनन्द-

विभोर है; कोई दुख नहीं, कोई अभाव नहीं, कोई चिन्ता नहीं, कोई शंका नहीं।

क्या अच्छा होता, अगर यह फुलवारी हमेशा ऐसी ही गुलजार बनी रहती, इसके पौधे और फूल हमेशा इसी तरह खुशी से झूमते रहते! लेकिन दुनिया की वह कौन गुलजार फुलवारी है, जिसके पौधों और फूलों की खुशी को पतझड़ अपने मनहूस कदमों से नहीं रौंद देता?

मुश्किल से इस खुशी के अभी छै महीने भी न गुजरे होंगे कि एक काली रात को खुशी की इस दुनिया के एक कोने में आग लग गई। मानिक सत्यनारायणजी की कथा के लिए कुछ जरूरी सामान लेने कसबे गया था। लौटने लगा तो काफी रात हो गई थी। कसबे से उसके गाँव का रास्ता जोखू के गाँव के सीवाने से होकर था। सामान की गठरी काँधे पर लटकाये वह तेजी से कदम बढ़ाये चला जा रहा था। उस गाँव के सीवाने के एक बाग में वह पहुँचा तो सहसा उसे लगा कि उसके पीछे कुछ लोग आ रहे हैं। मुड़कर उसने देखना चाहा कि तड़ाक से एक लाठी भरपूर उसके सिर पर बज उठी। फिर कई लाठियाँ साथ-साथ उसके ऊपर चारों ओर से बिजली की तेजी से चोट करने लगीं। उसका होश गायब हो गया। वह ज्यादा देर तक अपने को सँभाल न पाकर गिर पड़ा। सिर फट गया था। खून की धारें बह रही थीं। इतने में उसे लगा कि किसी ने उसके गले पर लाठी पट करके रखी है, फिर उसे जोर से दबाया गया है। उसकी साँसें घुटती गईं, घुटती गईं; आँखें बाहर निकल आईं।

हत्यारे लाश को ठिकाने लगाने की बात अभी सोच ही रहे थे कि कुछ लोगों के आने की आहट पाकर भाग चले। वे लोग भी कसबे से ही आ रहे थे। बाग में ऐन राह पर ही खून और लाश देखकर वे आशंका से भरकर ठिठक गए। गाँव के लोग ऐसी वारदातों से शहरियों की तरह भय खाकर भाग नहीं खड़े होते। ऐसे वक्तों पर भी वे अपना कर्तव्य

निभाना खूब जानते हैं। उन्होंने झुककर देखा और मानिक को पहचाना, तो उनके दुख की हद न रही। जवार का कोई ऐसा आदमी न था जो उन दो भाइयों को और उनकी ताकत और बहादुरी को न जानता हो। क्षण-भर में उन्हें जोगू के साथ गोपी की कुश्ती की बातें याद हो आईं। फिर सब-कुछ उनकी समझ में आप ही आ गया। जोगू के गाँव वालों से इस बुजदिलाना व्यवहार से वे क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने एक आदमी को गोपी को खबर करने को भेजा। साथ ही उससे यह भी कहने को कहा कि पूरे दल-बल के साथ उसके गाँव वाले अभी आ जाएँ, ताकि इन बुजदिलों से मानिक की हत्या का बदला टटके ही ले लिया जाए।

"बेचारा मानिक! उसकी जवान बहू की जिन्दगी हमेशा के लिए दुखी हो गई। इन कायरों को इनका जघन्य पाप निगल जाएगा। बदला ही लेना था, तो मरदों की तरह मैदान में लेते।" मानिक की लाश को घेरे हुए विषाद और क्रोध में बड़बड़ाते वे लोग वहीं बैठ गए।

गोपी के घर खबर पहुँची। माँ-बहुएँ छाती पीट-पीटकर, पछाड़ें खा-खाकर, चीख-चीखकर रो पड़ीं। गोपी को तो जैसे साँप सूँघ गया। वह सिर पकड़कर जहाँ-का-तहाँ बैठ गया। बाप दिल पर जैसे घूँसा खाकर पत्थर के बुत बन गए। इस आकस्मिक वज्रपात से उनका मस्तिष्क ही शून्य हो गया।

सारे गाँव में इस हादसे की खबर बिजली की तरह फैल गई। चारों ओर एक कुहराम-सा मच गया। सारा-का-सारा गाँव लाठी सँभाले हुए गोपी के दरवाजे पर दुख और क्षोभ से पागल हो इकट्ठा हो गया। औरतें माँ और बहुओं को सँभालने लगीं। बड़े-बूढ़े पिता को समझाने-बुझाने लगे। लेकिन जवानों को कहाँ चैन था? वे चारों ओर से गोपी को घेरकर उसे भाई की हत्या का बदला लेने के लिए ललकारने लगे।

थोड़ी देर तक तो गोपी सुध-बुध खोये उनकी बात सुनता रहा। फिर जैसे उसकी आँखों में लुत्तियाँ छिटकने लगीं। वह तड़पकर उठा

विभोर है; कोई दुख नहीं, कोई अभाव नहीं, कोई चिन्ता नहीं, कोई शंका नहीं।

क्या अच्छा होता, अगर यह फुलवारी हमेशा ऐसी ही गुलजार बनी रहती, इसके पौधे और फूल हमेशा इसी तरह खुशी से झूमते रहते! लेकिन दुनिया की वह कौन गुलजार फुलवारी है, जिसके पौधों और फूलों की खुशी को पतझड़ अपने मनहूस कदमों से नहीं रौंद देता?

मुश्किल से इस खुशी के अभी छै महीने भी न गुजरे होंगे कि एक काली रात को खुशी की इस दुनिया के एक कोने में आग लग गई। मानिक सत्यनारायणजी की कथा के लिए कुछ जरूरी सामान लेने कसबे गया था। लौटने लगा तो काफी रात हो गई थी। कसबे से उसके गाँव का रास्ता जोखू के गाँव के सीवाने से होकर था। सामान की गठरी कांधे पर लटकाये वह तेजी से कदम बढ़ाये चला जा रहा था। उस गाँव के सीवाने के एक बाग में वह पहुँचा तो सहसा उसे लगा कि उसके पीछे कुछ लोग आ रहे हैं। मुड़कर उसने देखना चाहा कि तड़ाक से एक लाठी भरपूर उसके सिर पर बज उठी। फिर कई लाठियाँ साथ-साथ उसके ऊपर चारों ओर से बिजली की तेजी से चोट करने लगीं। उसका होश गायब हो गया। वह ज्यादा देर तक अपने को सँभाल न पाकर गिर पड़ा। सिर फट गया था। खून की धारें बह रही थीं। इतने में उसे लगा कि किसी ने उसके गले पर लाठी पट करके रखी है, फिर उसे जोर से दबाया गया है। उसकी साँसें घुटती गईं, घुटती गईं; आँखें बाहर निकल आईं।

हत्यारे लाश को ठिकाने लगाने की बात अभी सोच ही रहे थे कि कुछ लोगों के आने की आहट पाकर भाग चले। वे लोग भी कसबे से ही आ रहे थे। बाग में ऐन राह पर ही खून और लाश देखकर वे आशंका से भरकर ठिठक गए। गाँव के लोग ऐसी वारदातों से शहरियों की तरह भय खाकर भाग नहीं खड़े होते। ऐसे वक्तों पर भी वे अपना कर्तव्य

निशाना खूब जानते हैं। उन्होंने भुककर देखा और मानिक को पहचाना, तो उनके दुख की हद न रही। जवार का कोई ऐसा आदमी न था जो उन दो भाइयों को और उनकी ताकत और बहादुरी को न जानता हो। क्षण-भर में उन्हें जोमू के साथ गोपी की कुश्ती की बातें याद हो आईं। फिर सब-कुछ उनकी समझ में आप ही आ गया। जोमू के गाँव वालों से इस बुज़दिलाना व्यवहार से वे क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने एक आदमी को गोपी को खबर करने को भेजा। साथ ही उससे यह भी कहने को कहा कि पूरे दल-बल के साथ उनके गाँव वाले अभी आ जाएँ, ताकि इन बुज़दिलों से मानिक की हत्या का बदला टटके ही ले लिया जाए।

"बेचारा मानिक! उसकी जवान बहू की जिन्दगी हमेशा के लिए दुखी हो गई। इन कायरों को इनका जघन्य पाप निगल जाएगा। बदला ही लेना था, तो मरदों की तरह मैदान में लेते।" मानिक की लाश को घेरे हुए विषाद और क्रोध में बड़बड़ाते वे लोग वहीं बैठ गए।

गोपी के घर खबर पहुँची। माँ-बहुएँ छाती पीट-पीटकर, पछाड़ें खा-खाकर, चीख़-चीख़कर रो पड़ीं। गोपी को तो जैसे साँप सूंघ गया। वह सिर पकड़कर जहाँ-का-तहाँ बैठ गया। बाप दिल पर जैसे घूंसा खाकर पत्थर के बुत बन गए। इस आकस्मिक वज्रपात से उनका मस्तिष्क ही शून्य हो गया।

सारे गाँव में इस हादसे की खबर बिजली की तरह फैल गई। चारों ओर एक कुहराम-सा मच गया। सारा-का-सारा गाँव लाठी सँभाले हुए गोपी के दरवाज़े पर दुख और क्षोभ से पागल हो इकट्ठा हो गया। औरतें माँ और बहुओं को सँभालने लगीं। बड़े-बूढ़े पिता को समझाने-बुझाने लगे। लेकिन जवानों को कहाँ चैन था? वे चारों ओर से गोपी को घेरकर उसे भाई की हत्या का बदला लेने के लिए ललकारने लगे।

थोड़ी देर तक तो गोपी सुध-बुध खोये उनकी बात सुनता रहा। फिर जैसे उसकी आँखों में लुत्तियाँ छिटकने लगीं। वह तड़पकर उठा

और कोने में खड़ी गोजी उठाकर घायल शेर की तरह दौड़ पड़ा। उसके पीछे-पीछे गाँव के लट्ठबाज़ नौजवान आँखों में बदले की आग लिये बढ़ चले। उधर खबर पाकर चौकीदार थाने की ओर दौड़ा।

जोखू के गाँव वालों को इस वारदात की कोई खबर न थी। उसके चन्द शागिर्दों का ही यह षड्यन्त्र था। उन्होंने अपना काम किया और चम्पत हो गए। गाँव वालों ने जब गाँव की ओर बढ़ता शोर सुना, तो सोचा कि शायद यह कोई डाकुओं का गिरोह गाँव को लूटने बढ़ा आ रहा है। पूरे गाँव में तहलका मच गया। नौजवानों ने लाठी सँभालकर मुकाबले का निश्चय किया और जिधर से वह शोर बढ़ता आ रहा था, उधर वे गाँव के बाहर ही भिड़ पड़ने को दौड़ पड़े। औरतों और बूढ़ों का कलेजा धक्-धक् कर रहा था। बच्चे बिलबिला उठे थे।

गोपी का दल पास पहुँचा तो सामने लाठियाँ उठी देखकर उन्होंने समझ लिया कि खुली फौजदारी की तैयारी इन्होंने पहले ही से कर रखी है। समझने-बूझने की स्थिति में कोई दल न था। एक-दूसरे पर वे भूखे शेरों की तरह झपट पड़े। लाठियाँ पटापट बजने लगीं। अँधेरे में सैकड़ों बिजलियाँ कौंधने लगीं। अँधेरे में अन्धों की तरह बस अन्धा-धुन्ध लाठियाँ चल रही थीं। किसके दल का कौन घायल होकर गिरता है, किसकी लाठी किस पर और कहाँ गिरती है, यह जानने की सुध-बुध किसी को न थी। एक ओर मानिक की हत्या के बदले की लपटें जल रही थीं, तो दूसरी ओर अपनी जान-माल की रक्षा का सवाल था। कोई दल अपनी हार कैसे मान लेता? देखते-देखते कई लोथें ज़मीन पर तड़पने लगीं। खून की बौछार से जगह-जगह फिसलन हो गई। लेकिन इसकी ओर ध्यान देने का अवकाश किसे था? वहाँ तो जान देने और लेने की बाज़ी लगी थी।

मानिक की लाश थाने पर ले जाने का हुक्म देकर दारोगा और नायब दस हथियारबन्द कान्सटेबलों के साथ चौकीदार को आगे करके घटना-स्थल की ओर लपके। लाठियों की पटापट सुनकर उन्होंने टार्च

जलाकर सामने का विकट दृश्य देखा, तो अपना रिवाल्वर निकाल लिया और कान्सटेबलों को हवाई फायर करने का हुक्म दिया।

फायरों की आवाज सुनकर दोनों दल वालों ने समझ लिया कि पुलिस की दौड़ आ गई। वे अपनी लाठियाँ रोक भी न पाये थे कि पुलिस दनदनाती पहुँच गई। लोग भागने को ही थे कि वे चारों ओर से पुलिस की संगीनों से घिर गए। टार्चों की रोशनी से उनकी आँखें चौंधिया रही थीं। देखते-देखते उनके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं।

गोपी के बाएँ हाथ की तीन उँगलियाँ पिस गई थीं और गले के पास की दाहिनी पसली पर गहरी चोट आयी थी। लेकिन विषाद और क्रोध के झोंके में वह इस तरह गाफिल था कि दूसरे दिन सुबह उसकी आँखें परगने के हस्पताल में खुलीं तो उसे इसका भी ज्ञान न था कि वह कहाँ है, उसके हाथ, गले और छाती में क्यों पट्टियाँ बँधी हैं, उसका शरीर क्यों चूर-चूर हो गया है, उसका दिमाग क्यों ज़ोर-ज़ोर से झन-झना रहा है। उसके अगल-बगल और भी उसके गाँव और जोखू के गाँव के कई जवान उसीकी हालत में पड़े हुए थे। सब एक-दूसरे को टकटक फटी-फटी आँखों से ताक रहे थे। लेकिन जैसे किसी में भी कुछ कहने-सुनने की ताकत ही न थी, जैसे वे सब अपने लिए और एक-दूसरे के लिए समस्या बने हुए हों।

मानिक रहा नहीं; घायल गोपी कानून की गिरफ्त में पड़ा हुआ फैसले का इन्तज़ार कर रहा है; माँ-बाप और बहुओं के सिर पर एक साथ ही जैसे पहाड़ गिर पड़ा जिसके नीचे वे दबे हुए छटपटा रहे हैं, कराह रहे हैं, तड़प रहे हैं।

गाँव के कई घरों में मातम छाया है, कई घरों में दुख की घटा घिरी है। लेकिन गोपी के घर का विषाद जैसे फैलकर पूरे गाँव पर छा गया है। लोग उसके घर भीड़ लगाये रहते हैं। कभी माँ-बाप को समझाते

और कोने में खड़ी गोजी उठाकर घायल शेर की तरह दौड़ पड़ा। उसके पीछे-पीछे गाँव के लठ्ठबाज नौजवान आँखों में बदले की आग लिये बढ़ चले। उधर खबर पाकर चौकीदार थाने की ओर दौड़ा।

जोखू के गाँव वालों को इस वारदात की कोई खबर न थी। उसके चन्द शागिर्दों का ही यह षड्यन्त्र था। उन्होंने अपना काम किया और चम्पत हो गए। गाँव वालों ने जब गाँव की ओर बढ़ता शोर सुना, तो सोचा कि शायद यह कोई डाकुओं का गिरोह गाँव को लूटने बढ़ा आ रहा है। पूरे गाँव में तहलका मच गया। नौजवानों ने लाठी सँभालकर मुकाबले का निश्चय किया और जिधर से वह शोर बढ़ता आ रहा था, उधर वे गाँव के बाहर ही भिड़ पड़ने को दौड़ पड़े। औरतों और बूढ़ों का कलेजा धक्-धक् कर रहा था। बच्चे बिलबिला उठे थे।

गोपी का दल पास पहुँचा तो सामने लाठियाँ उठी देखकर उन्होंने समझ लिया कि खुली फौजदारी की तैयारी इन्होंने पहले ही से कर रखी है। समझने-बूझने की स्थिति में कोई दल न था। एक-दूसरे पर वे भूखे शेरों की तरह झपट पड़े। लाठियाँ पटापट बजने लगीं। अँधेरे में सैंकड़ों बिजलियाँ कौंधने लगीं। अँधेरे में अन्धों की तरह बस अन्धाधुन्ध लाठियाँ चल रही थीं। किसके दल का कौन घायल होकर गिरता है, किसकी लाठी किस पर और कहाँ गिरती है, यह जानने की सुध-बुध किसी को न थी। एक ओर मानिक की हत्या के बदले की लपटें जल रही थीं, तो दूसरी ओर अपनी जान-माल की रक्षा का सवाल था। कोई दल अपनी हार कैसे मान लेता? देखते-देखते कई लोथें जमीन पर तड़पने लगीं। खून की बौछार से जगह-जगह फिसलन हो गई। लेकिन इसकी ओर ध्यान देने का अवकाश किसे था? यहाँ तो जान देने और लेने की बाजी लगी थी।

मानिक की लाश थाने पर ले जाने का हुक्म देकर दारोगा और नायब दस हथियारबन्द कान्सटेबलों के साथ चौकीदार को आगे करके घटना-स्थल की ओर लपके। लाठियों की पटापट सुनकर उन्होंने टार्च

जलाकर सामने का विकट दृश्य देखा, तो अपना रिवाल्वर निकाल लिया और कान्सटेबलों को हवाई फायर करने का हुक्म दिया।

फायरों की आवाज़ सुनकर दोनों दल वालों ने समझ लिया कि पुलिस की दौड़ आ गई। वे अपनी लाठियाँ रोक भी न पाये थे कि पुलिस दनदनाती पहुँच गई। लोग भागने को ही थे कि वे चारों ओर से पुलिस की सगीनों से घिर गए। टार्चों की रोशनी से उनकी आँखें चौंधिया रही थीं। देखते-देखते उनके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं।

गोपी के बाएँ हाथ की तीन उँगलियाँ पिस गई थीं और गले के पास की दाहिनी पसली पर गहरी चोट आयी थी। लेकिन विषाद और क्रोध के झोंके में वह इस तरह गाफिल था कि दूसरे दिन सुबह उसकी आँखें परगने के हस्पताल में खुलीं तो उसे इसका भी ज्ञान न था कि वह कहाँ है, उसके हाथ, गले और छाती में क्यों पट्टियाँ बँधी हैं, उसका शरीर क्यों चूर-चूर हो गया है, उसका दिमाग क्यों ज़ोर-ज़ोर से झन-झना रहा है। उसके अगल-बगल और भी उसके गाँव और जोगू के गाँव के कई जवान उसीकी हालत में पड़े हुए थे। सब एक-दूसरे को टकटक फटी-फटी आँखों से ताक रहे थे। लेकिन जैसे किसी में भी कुछ कहने-सुनने की ताकत ही न थी, जैसे वे सब अपने लिए और एक-दूसरे के लिए समस्या बने हुए हों।

मानिक रहा नहीं; घायल गोपी कानून की गिरफ्त में पड़ा हुआ फैसले का इन्तज़ार कर रहा है; माँ-बाप और बहुओं के सिर पर एक साथ ही जैसे पहाड़ गिर पड़ा जिसके नीचे वे दबे हुए छटपटा रहे हैं, कराह रहे हैं, तड़प रहे हैं।

गाँव के कई घरों में मातम छाया है, कई घरों में दुख की घटा घिरी है। लेकिन गोपी के घर का विषाद जैसे फैलकर पूरे गाँव पर छा गया है। लोग उसके घर भीड़ लगाये रहते हैं। कभी माँ-बाप को समझाते

और कोने में खड़ी गोजी उठाकर घायल शेर की तरह दौड़ पड़ा। उसके पीछे-पीछे गाँव के लट्ठबाज़ नौजवान आँखों में बदले की आग लिये बढ़ चले। उधर खबर पाकर चौकीदार थाने की ओर दौड़ा।

जोखू के गाँव वालों को इस वारदात की कोई खबर न थी। उसके चन्द शागिर्दों का ही यह षड्यन्त्र था। उन्होंने अपना काम किया और चम्पत हो गए। गाँव वालों ने जब गाँव की ओर बढ़ता शोर सुना, तो सोचा कि शायद यह कोई डाकुओं का गिरोह गाँव को लूटने बढ़ा आ रहा है। पूरे गाँव में तहलका मच गया। नौजवानों ने लाठी सँभालकर मुकाबले का निश्चय किया और जिधर से वह शोर बढ़ता आ रहा था, उधर वे गाँव के बाहर ही भिड़ पड़ने को दौड़ पड़े। औरतों और बूढ़ों का कलेजा धक्-धक् कर रहा था। बच्चे बिलबिला उठे थे।

गोपी का दल पास पहुँचा तो सामने लाठियाँ उठी देखकर उन्होंने समझ लिया कि खुली फौजदारी की तैयारी इन्होंने पहले ही से कर रखी है। समझने-बूझने की स्थिति में कोई दल न था। एक-दूसरे पर वे भूखे शेरों की तरह झपट पड़े। लाठियाँ पटापट बजने लगीं। अँधेरे में सैकड़ों बिजलियाँ कौंधने लगीं। अँधेरे में अन्धों की तरह बस अन्धा-धुन्ध लाठियाँ चल रही थीं। किसके दल का कौन घायल होकर गिरता है, किसकी लाठी किस पर और कहाँ गिरती है, यह जानने की सुध-बुध किसी को न थी। एक ओर मानिक की हत्या के बदले की लपटें जल रही थीं, तो दूसरी ओर अपनी जान-माल की रक्षा का सवाल था। कोई दल अपनी हार कैसे मान लेता? देखते-देखते कई लोथें जमीन पर तड़पने लगीं। खून की बौछार से जगह-जगह फिसलन हो गई। लेकिन इसकी ओर ध्यान देने का अवकाश किसे था? वहाँ तो जान देने और लेने की बाज़ी लगी थी।

मानिक की लाश थाने पर ले जाने का हुक्म देकर दारोगा और नायब दस हथियारबन्द कान्सटेबलों के साथ चौकीदार को आगे करके घटना-स्थल की ओर लपके। लाठियों की पटापट सुनकर उन्होंने टार्च

जलाकर सामने का विकट दृश्य देखा, तो अपना रिवाल्वर निकाल लिया और कान्सटेबलों को हवाई फायर करने का हुक्म दिया।

फायरों की आवाज सुनकर दोनों दल वालों ने समझ लिया कि पुलिस की दौड़ आ गई। वे अपनी लाठियाँ रोक भी न पाये थे कि पुलिस दनदनाती पहुँच गई। लोग भागने को ही थे कि वे चारों ओर से पुलिस की संगीनों से घिर गए। टार्चों की रोशनी से उनकी आँखें चौंधिया रही थीं। देखते-देखते उनके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं।

गोपी के बाएँ हाथ की तीन उँगलियाँ पिस गई थीं और गले के पास की दाहिनी पसली पर गहरी चोट आयी थी। लेकिन विषाद और क्रोध के झोंके में वह इस तरह गाफिल था कि दूसरे दिन सुबह उसकी आँखें परगने के हस्पताल में खुलीं तो उसे इसका भी ज्ञान न था कि वह कहाँ है, उसके हाथ, गले और छाती में क्यों पट्टियाँ बँधी हैं, उसका शरीर क्यों चूर-चूर हो गया है, उसका दिमाग क्यों जोर-जोर से झन-झना रहा है। उसके अगल-बगल और भी उसके गाँव और जोखू के गाँव के कई जवान उसीकी हालत में पड़े हुए थे। सब एक-दूसरे को टकटक फटी-फटी आँखों से ताक रहे थे। लेकिन जैसे किसी में भी कुछ कहने-सुनने की ताकत ही न थी, जैसे वे सब अपने लिए और एक-दूसरे के लिए समस्या बने हुए हों।

मानिक रहा नहीं; घायल गोपी कानून की गिरफ्त में पड़ा हुआ फैसले का इन्तजार कर रहा है; माँ-बाप और बहुओं के सिर पर एक साथ ही जैसे पहाड़ गिर पड़ा जिसके नीचे वे दबे हुए छटपटा रहे हैं, कराह रहे हैं, तड़प रहे हैं।

गाँव के कई घरों में मातम छाया है, कई घरों में दुख की घटा घिरी है। लेकिन गोपी के घर का विषाद जैसे फैलकर पूरे गाँव पर छा गया है। लोग उसके घर भीड़ लगाये रहते हैं। कभी माँ-बाप को समझ

हैं, कभी सान्त्वना देते हैं और कभी अपने को भी सँभालने में असमर्थ होकर उन्हींके साथ-साथ खुद भी रो पड़ते हैं।

मुकदमे की पैरवी का इन्तज़ाम हो रहा है। सब-के-सब अपनी गाढ़ी कमाई बहा देने को तैयार हैं। गाँवदारी का मामला है, गाँव के नौजवानों की जिन्दगी का वास्ता है और सबसे बढ़कर गांव की आँखों के तारे माँ-बाप के अकेले सहारे, तड़पती औरत और दुर्भाग्य की मारी बेवा भाभी की जिन्दगी की अकेली आशा, गोपी को बचा लेने का सवाल है। बहुओं के बाप और बड़े भाई भी इस विपत्ति की खबर पाकर आ गए हैं। उनके दुख का भी ठिकाना नहीं है। वे भी गोपी को बचा लेने के लिए सब-कुछ न्योछावर करने पर तुले हैं।

कोई भी रकम कानून का मुँह बन्द करने में असमर्थ है। पाँच आदमियों का कतल हुआ है, एकाध की बात होती, तो दारोगा पचा-खपा देता। वह मजबूर है। हाँ, जिले के बड़े अफसर कुछ जरूर कर सकते हैं, लेकिन उनके यहाँ इन देहातियों की पहुँच नहीं।

घायल अच्छे हो-होकर हवालात में पड़े हैं। मुकदमा सेशन सुपुर्द है। फौजदारी के सबसे बड़े वकील को किया गया है। उसकी बहुत कोशिशों पर भी किसी की जमानत मंजूर न हुई।

पिता एक बार गोपी से मिल आए हैं। मिलते वक्त दोनों ने अपने दिल-दिमाग पर पूरा-पूरा काबू रखने की कोशिश की थी। किसी प्रकार की दुर्बलता या तड़पन दिखाकर वे एक-दूसरे का दुख बढ़ाना न चाहते थे। बाप ने बेटे को ढारस बँधाया। बेटे ने बाप को कोई चिन्ता न करने को कहा। और कोई विशेष बात न हुई। बिछड़ते समय, पता नहीं, दिल के किस दर्द के जोश में गोपी ने कहा, "भौजी का ख़याल रखियो।"

उस एक बात में कितना दर्द, कितनी कसक, कितनी तड़पन थी, बाप ने उसका अनुभव करके ही ऐंठता दिल लिये मुँह फेर लिया था। उधर गोपी ने आँसू पोंछ लिए, इधर जेल के फाटक पर बाप ने अपनी आँखों के आँसुओं को पलकों में ही सँभाल लिया।

आखिर मुकदमे का फैसला हुआ। सजा सबको हुई। किसी को तीन साल, तो किसी को चार और किसी को पाँच साल के लिए जेल भेज दिया गया। गोपी को पाँच साल की सजा हुई। उनके घर में थोमा हुआ मातम फिर एक बार जोर पकड़ गया। माँ-बाप के दुःख का क्या कहना! बड़ी बहू की हालत अबतर तो थी ही। छोटी बहू के दिल में भी एक शूल चुभ गया।

चार



बाप अब सचमुच बूढ़े हो गए। दोनों बेटे क्या उनसे बिछड़ गए, उनके दोनों हाथ ही टूट गए। दिल के सारे रस को दर्द की आग ने जला दिया। कोई उत्साह, आशा न रह गई उनके जीवन में। बहुओं का दर्द देखकर वह आठों पहर कुढ़ते रहते। खाना-पीना, काम-धाम कुछ भी अच्छा न लगता। बहुओं का बड़ा भाई आ-आकर खेती गिरस्ती का इन्तजाम करा जाता।

माँ का भी हाल बेहाल था। बैठी-बैठी वह आँसू बहाती रहती या अपने लालों को याद कर-करके बिसूरती रहती। बड़ी बहू के दिल में जो एक बार शूल चुभा, तो उसका चैन हमेशा के लिए खतम हो गया। वह बड़े ही कोमल और भावुक स्वभाव की थी। दुनिया के दुख और चिन्ता का उसे कोई अनुभव न था। सहसा जो आफत का पहाड़ उसके सिर पर आ गिरा तो वह उससे दब-दबाकर चूर-चूर होकर ही रह गई। उसने चारपाई पकड़ ली। खाना-पीना छोड़ दिया; दिन-दिन सूखने

लगी। सास-ससुर अपने दुख का आवेग रोककर उसे समझाते, भाई और दूसरी औरतें उसे अपने को सँभालने को कहते, लेकिन जैसे उसके कानों में किसी की बात ही नहीं पड़ती।

एक दिन बाप कोल्हुआड़े से रात को लौट रहे थे तो उन्हें ज़ोर की सरदी लग गई। दूसरे दिन बुखार ले पड़ गए। यह ऐसा बुखार था कि हफ्तों पड़े रहे। खाँसी का अलग ज़ोर था। जो दवा-दारू मुमकिन था किया गया। घर की ऐसी तितर-बितर हालत थी कि उनकी सेवा भली-प्रकार न हो सकती थी। छोटी बहू ने तो पहले ही से चारपाई पकड़ ली थी। बड़ी बहू को अपने दुख से ही फ़ुरसत न थी। अकेली दुखियारी बूढ़ी क्या-क्या कैसे-कैसे करती। फल यह हुआ कि बूढ़े कुछ सँभले, तो उनके दोनों ठेहुनों को गठिया ने पकड़ लिया। कुछ दिनों तक तो वह लाठी का सहारा लेकर हिलते-डुलते कुछ-कुछ चल-फिर लेते थे। फिर उससे भी मजबूर हो गए। अब ओसारे के एक कोने में चारपाई पर पड़े-पड़े एड़ियाँ रगड़ रहे हैं।

लोग उस घर की यह बिगड़ी हालत देखते हैं और आह भरकर कहते हैं, "ओह, क्या था और क्या हो गया।"

आखिर बड़ी बहू को खयाल आया कि घर की इस दिन-पर-दिन गिरती हालत की रोक-थाम न हुई तो यह तो कहीं का न रह जाएगा। उसे अपने लिए अब सोचने ही को क्या रह गया था? उसका जीवन तो नष्ट हो ही गया। उसके साथ ही अगर यह खानदान भी नष्ट हो गया तो उसके जीवन के इस कठोर श्राप का कितना दर्दनाक परिणाम होगा? नहीं, नहीं, वह घर की बड़ी बहू है, उसे अपनी ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए। सब अपने-ही-अपने दुख से कातर होकर पड़े रहेंगे, तो काम कैसे चलेगा? और अब उसके जीवन का उद्देश्य सास, ससुर, देवर और बहन की सेवा के सिवा रह ही क्या गया है? उसके दुर्भाग्य के कारण ही तो इस घर की यह हालत हो गई है। सास, ससुर, देवर, बहन, सब-के-सब उसीके कारण तो इस हालत को पहुँचे हैं। फिर क्या अपने

दुख में ही डूबकर उनके तईं जो उसकी जिम्मेदारी है, उसे वह भुला देगी ? नहीं, अब उसका जीवन उन्हीके लिए तो है। उनकी सेवा वह दिल पर पत्थर रखकर करेगी। दुख की चढ़ी नदी एक-न-एक दिन तो उतरेगी ही।

उस दिन से जैसे वह करुणा की देवी बन गई और दुखी और जलती हुई आत्माओं पर वह सेवा-शुश्रूषा, स्नेह और भक्ति की शीतल छाया बनकर छा गई। स्नान करके बहुत सवेरे ही वह पूजा करती। फिर सास, ससुर और बहन की सेवाओं में जुट जाती।

ससुर उसकी सूनी मांग, सूनी कलाई और सफेद वस्त्र में लिपटी हुई उसकी कुम्हलाई देह देखकर मन-ही-मन रो पड़ते। उनसे कुछ कहते न बनता। वह उन्हें सहारा देकर चारपाई पर से उठाती, उनका हाथ-मुंह धुलाती, सामने बैठ उन्हें भोजन कराती। ससुर काठ के पुतले की तरह सब करते और दिल में बस एक तड़प का तूफान लिये, जब तक वह उनके सामने रहती, मूक होकर उसके करुण मुखड़े की ओर टुकर-टुकर ताका करते।

सास को कुछ सन्तोष हुआ कि चलो यह अच्छा हुआ कि बड़ी बहू अपने को यों कामों बुझाने रखने लगी। ऐसा करने से वह दुख को भुलाये रहेगी और उसका मन भी बहला रहेगा।

छोटी बहन की तो वह मां ही बन गई। पहले वह उसे बहन की तरह प्यार करती थी, लेकिन अब उसे बहन के प्यार के साथ-साथ मां के स्नेह, ममता, सेवा और त्याग की भी जरूरत थी। बड़ी बहू ने उसे वह सब-कुछ देना शुरू कर दिया। वह उसे बच्चों की तरह गोद में बिठाकर दवा पिलाती, खिलाती, उसके कपड़े बदलती, उसके बाल संवारती, चोटी गूंथती। फिर सिन्दूरदान उसके सामने रखकर कहती, "ले अब मांग तो ठीक ले।"

यह सुनकर छोटी बहन की वीरान आंखें अपनी बड़ी बहन की सूनी मांग की ओर उठ जाती। उसके कलेजे में एक हूक उठती और वह डब-

डबाई आँखें एक ओर फेरती, कहती, "इसे रख दे बहन।"

बड़ी बहन उसे गोद में लेकर, क्रन्दन करते मन को काबू में करके कहती, "ऐसा न कह मेरी बहन, मेरी माँग लुट गई तो क्या हुआ ? तेरी माँग का सिन्दूर भगवान् कायम रखें। उसे ही देख-देखकर मैं यह दुख का जीवन काट लूंगी। ले, भर तो ले माँग।"

छोटी बहन बड़ी बहन की गोद में मुँह डालकर फूट-फूटकर रो पड़ती। बड़ी बहन की आँखों से भी टप-टप आँसू की बूँदें चू पड़तीं। लेकिन अगले क्षण ही वह अपने को सँभालकर कहती, "ऐसा नहीं करते, मेरी लाडली," कहकर वह उसकी आँखों को अपने आँचल से पोंछ देती। फिर कहती, "ले अब तो सिन्दूर लगा ले मेरी अच्छी बहन।"

छोटी बहन आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं का तूफान लिये काँपती उँगलियों से सलाका उठाकर सिन्दूर की डिबिया से सिन्दूर उठाती। बड़ी बहन उस वक्त न जाने कैसा ऐंठता दर्द दिल में लिये अपनी भरी आँखें दूसरी ओर फेर लेती।

गोपी की भाभी को उसके पति की याद बहुत सताती। हर घड़ी उसकी भरी आँखों के सामने पति की तरह-तरह की तसवीरें झलमलाया करतीं। पूजा करने बैठती तो हमेशा यही मिनती करती, "हे भगवान्, मुझे भी उनके चरणों में पहुँचा दो !"

कभी-कभी उसे अपने देवर की और अपनी हँसी, दिल्लगी और खुशी के ठहाकों की भी याद आती। उस समय उसे लगता कि वह सब एक सपना था। आह, यह कौन जानता था कि वह हँसी-खुशी की बातें एक दिन इस तरह हमेशा के लिए खतम हो जाएंगी और उनकी गूंज आत्मा के कण-कण में एक दर्द-भरा गीत बनकर रह जाएगी ? फिर उसे खयाल आता कि किस तरह देवर ने भाई की हत्या

के कारण शोक में पागल होकर अपने सुख की बलि चढ़ा दी। उस क्षण बरबस ही उसकी आँखें छोटी बहन की ओर उठ जातीं, जिसके दामन में देवर के जीवन का सुख-दुख बँधा हुआ था। वह देख रही है कि उसकी हर तरह की सेवा-शुश्रूषा के बावजूद भी दिन-दिन वह फूल की तरह मुरझाती चली जा रही है। वह उसे हर तरह समझाने-बुझाने की कोशिश करती है, लेकिन जैसे वह कुछ समझती ही नहीं। देवर जब लौटके आएगा, और उसे इस हालत में देखेगा, तो उसकी क्या दशा होगी?

धीरे-धीरे दुख झेलते-झेलते वह पत्थर बन गई। बहन की सेवा वह और भी जी-जान से करने लगी। उसे लगता कि वह सिर्फ उसकी बहन ही नहीं है, बल्कि उसके प्यारे देवर की अमूल्य अमानत भी है। उस अमानत की रक्षा करना उसका सबसे बढ़कर कर्तव्य है।

लेकिन उसकी इतनी सेवाओं का कोई भी असर उसकी बहन पर पड़ता दिखाई न देता। उसका हृदय कभी-कभी एक भयावनी आशंका से काँप उठता। वह ठाकुर की मूरत के सामने गिड़गिड़ाकर विनती करती, "हे भगवान्, अब तो दया कर तू इस अभागे घर पर! और अगर तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं, तो तू मुझ अभागिन को ही उठा ले और अपने कोप को शान्त कर ले।"

लेकिन भगवान् ने भी जैसे अपनी कृपा-दृष्टि उस खानदान से फेर ली थी। छोटी बहन की हालत न सुधरनी थी, न सुधरी। आखिर उसकी हालत जब दिन-दिन बिगड़ती ही गई, तो उसका भाई एक दिन उसे अपने घर लिवा ले गया। खयाल था कि शायद हवा बदलने से, वहाँ माँ-भाभी और अपनी सखी-सहेलियों के बीच रहकर, मन मगन होने से तबीअत बहलाने से वह स्वस्थ हो जाए। वह तो अपनी बड़ी बहन को भी कुछ दिनों के लिए लिवा ले जाना चाहता था, लेकिन इस घर का उसके बिना कैसे काम चलेगा, यही सोचकर उसे न ले जा सका। पालकी पर चढ़ने के पहले छोटी बहू खूब बिलखकर रोयी और सास और बहन से

डबाई आँखें एक ओर फेरती, कहती, "इसे रख दे बहन।"

बड़ी बहन उसे गोद में लेकर, क्रन्दन करते मन को काबू में करके कहती, "ऐसा न कह मेरी बहन, मेरी माँग लुट गई तो क्या हुआ ? तेरी माँग का सिन्दूर भगवान् कायम रखें। उसे ही देख-देखकर मैं यह दुख का जीवन काट लूँगी। ले, भर तो ले माँग।"

छोटी बहन बड़ी बहन की गोद में मुँह डालकर फूट-फूटकर रो पड़ती। बड़ी बहन की आँखों से भी टप-टप आँसू की बूँदें चू पड़तीं। लेकिन अगले क्षण ही वह अपने को सँभालकर कहती, "ऐसा नहीं करते, मेरी लाडली," कहकर वह उसकी आँखों को अपने आँचल से पोंछ देती। फिर कहती, "ले अब तो सिन्दूर लगा ले मेरी अच्छी बहन।"

छोटी बहन आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं का तूफान लिये काँपती उँगलियों से सलाका उठाकर सिन्दूर की डिबिया से सिन्दूर उठाती। बड़ी बहन उस वक्त न जाने कैसा ऐंठता दर्द दिल में लिये अपनी भरी आँखें दूसरी ओर फेर लेती।

गोपी की भाभी को उसके पति की याद बहुत सताती। हर घड़ी उसकी भरी आँखों के सामने पति की तरह-तरह की तसवीरें झलमलाया करतीं। पूजा करने बैठती तो हमेशा यही मिनती करती, "हे भगवान्, मुझे भी उनके चरणों में पहुँचा दो !"

कभी-कभी उसे अपने देवर की और अपनी हँसी, दिल्लगी और खुशी के ठहाकों की भी याद आती। उस समय उसे लगता कि वह सब एक सपना था। आह, यह कौन जानता था कि वह हँसी-खुशी की बातें एक दिन इस तरह हमेशा के लिए खतम हो जाएँगी और उनकी गूँज आत्मा के कण-कण में एक दर्द-भरा गीत बनकर रह जाएगी ? फिर उसे खयाल आता कि किस तरह देवर ने भाई की हत्या

के कारण शोक में पागल होकर अपने सुख की बलि चढ़ा दी। उस क्षण बरबस ही उसकी आँखें छोटी बहन की ओर उठ जातीं, जिसके दामन से देवर के जीवन का सुख-दुख बँधा हुआ था। वह देख रही है कि उसकी हर तरह की सेवा-शुश्रूषा के बावजूद भी दिन-दिन वह फूल की तरह मुरझाती चली जा रही है। वह उसे हर तरह समझाने-बुझाने की कोशिश करती है, लेकिन जैसे वह कुछ समझती ही नहीं। देवर जब लौटके आएगा, और उसे इस हालत में देखेगा, तो उसकी क्या दशा होगी?

धीरे-धीरे दुख झेलते-झेलते वह पत्थर बन गई। बहन की सेवा वह और भी जी-जान से करने लगी। उसे लगता कि वह सिर्फ उसकी बहन ही नहीं है, बल्कि उसके प्यारे देवर की अमूल्य अमानत भी है। उस अमानत की रक्षा करना उसका सबसे बढ़कर कर्तव्य है।

लेकिन उसकी इतनी सेवाओं का कोई भी असर उसकी बहन पर पड़ता दिखाई न देता। उसका हृदय कभी-कभी एक भयावनी आशंका से काँप उठता। वह ठाकुर की मूरत के सामने गिड़गिड़ाकर मिनती करती, "हे भगवान्, अब तो दया कर तू इस अभागे घर पर! और अगर तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं, तो तू मुझ अभागिन को ही उठा ले और अपने कोप को शान्त कर ले।"

, लेकिन भगवान् ने भी जैसे अपनी कृपा-दृष्टि उस खानदान से फेर ली थी। छोटी बहन की हालत न सुधरनी थी, न सुधरी। आखिर उसकी हालत जब दिन-दिन बिगड़ती ही गई, तो उसका भाई एक दिन उसे अपने घर लिवा ले गया। खयाल था कि शायद हवा बदलने से, वहाँ माँ-भाभी और अपनी सखी-सहेलियों के बीच रहकर, मन आन होने से तबीयत बहलाने से वह स्वस्थ हो जाए। वह तो अपनी बड़ी बहन को भी कुछ दिनों के लिए लिवा ले जाना चाहता था, लेकिन इस घर का उसके बिना कैसे काम चलेगा, यही सोचकर उसे न ले जा सका। पालकी पर चढ़ने के पहले छोटी बहू खूब बिलखकर रोयी और सास और बहन से

ऐसे लिपटकर मिली, जैसे वह उनसे आखिरी विदाई ले रही हो। ससुर के पैरों को उसने आंसुओं से धो दिया। बूढ़े ससुर हाथों से आँखें ढककर बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़े।

कौन जानता था कि सचमुच यह उसकी आखिरी विदाई थी? माँ, बाप, भाई, भौजाई ने कुछ भी उठा न रखा। रुपये-पैसे पानी की तरह बहा दिये। लेकिन हुआ वही, जो होना था। वह शूल जो एक दिन उस कोमल प्राण में चुभा था, उसने उसके प्राण लेकर ही दम लिया।

यह खबर जब सास-ससुर और बहन को मिली, तो उनकी क्या हालत हुई, इसका वर्णन नहीं हो सकता। यह तो कुछ वही हुआ जैसे उनके दिल के नासूर में एक तीर और आ लगा।

पाँच

•

जेल में शुरू-शुरू में गोपी के बाप उससे हर महीने एक बार मिलते रहे। फिर जब वह चलने-फिरने से मजबूर हो गए, तो उसके ससुर और साला बराबर उससे मिलने जाया करते। गोपी हर बार अपने माँ-बाप और भाभी के बारे में पूछता, घर-गिरस्ती के बारे में पूछता। वे कुछ गोल-मोल उसे बता देते। संकोचवश न गोपी अपनी औरत के बारे में पूछता, न वे बताते। क़ैद का दुख ही क्या कम होता है, जो वे उससे कोई दिल पर चोट पहुँचाने वाली बात कहकर उसके दुख को और बढ़ाते?

गोपी को जेल में सबकी याद सताती, लेकिन भाभी के दुख का

उसे जितनी चिन्ता थी, उतनी और किसी बात की न थी। भाभी के विधवा रूप का चित्र हमेशा उसकी आँखों में घूमा करता। जिस प्यारी भाभी को पाकर, जिसके हृदय के स्नेह-दान से आकण्ठ तृप्त होकर, एक दिन वह निहाल हो उठा था, उसी भाभी को विधवा रूप में वह किन आँखों से देख सकेगा? वह सूनी मांग, वह सूनी कलाइयाँ, वह मुरझाया मुखड़ा…

कारावास के परिश्रम से उसने कभी जी न चुराया। मेहनती देह पर कठोर परिश्रम का भी क्या असर पड़ता था? घर की तरह खाने-पीने को मिलता, बेफिक्री की जिन्दगी होती, तो जेल में भी गोपी जैसा-का-तैसा बना रहता। किन्तु घी-दूध के पाले शरीर का अब सूखी रोटी और कंकड़-मिली दाल से पाला पड़ा था। ऊपर से भाभी की चिन्ता चौबीसों पहर की। गोपी सूखकर काँटा हो गया। फिर भी ढाँचा एक पहलवान का था। सड़ा हुआ तेली भी एक पसेरी। किस की मजाल थी कि आँख दिखा दे। फिर सीधे गोपी से किसी को उलझने का मौका भी कैसे मिलता? वह दिन-रात अपनी ही मुसीबत में उलझा रहता। इतना बड़ा जेल भी जैसे एक एकाकीपन के घेरे में ही उसके लिए सीमित बना रहा।

मुकदमे के दौरान में वह जिला अस्पताल में पड़ा रहा था। पसली की चोट खतरनाक थी। दर्द जाता ही न था। छोटे अस्पताल में एक्सरे वगैरा था नहीं। फिर किसी के लिए कोई क्या जहमत उठाये? जैसे-तैसे दवा होती रही और मुकदमा चलता रहा। और फिर उसे हवालात में भेज दिया गया। सजा पाकर गोपी जब बनारस जिला जेल में भेज दिया गया, तो भी उसकी वही हालत थी। वह तो बस उसमें इतना था कि वह सब झेले जा रहा था।

बनारस जिला जेल के अस्पताल में उसके सौभाग्य से एक म

से लिपटकर मिली, जैसे वह उनसे आखिरी विदाई ले रही हो। ससुर के पैरों को उसने आँसुओं से धो दिया। बूढ़े ससुर हाथों से आँखें ढककर बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़े।

कौन जानता था कि सचमुच यह उसकी आखिरी विदाई थी? माँ, बाप, भाई, भौजाई ने कुछ भी उठा न रखा। रुपये-पैसे पानी की तरह बहा दिये। लेकिन हुआ वही, जो होना था। वह शूल जो एक दिन उस कोमल प्राण में चुभा था, उसने उसके प्राण लेकर ही दम लिया।

यह खबर जब साल-ससुर और बहन को मिली, तो उनकी क्या हालत हुई, इसका वर्णन नहीं हो सकता। यह तो कुछ वही हुआ जैसे उनके दिल के नासूर में एक तीर और आ लगा।

पाँच

जेल में शुरू-शुरू में गोपी के बाप उससे हर महीने एक बार मिल[illegible] रहे। फिर जब वह चलने-फिरने से मजबूर हो गए, तो उसके ससुर औ[illegible] साला बराबर उससे मिलने जाया करते। गोपी हर बार अपने माँ-ब[illegible] और भाभी के बारे में पूछता, घर-गिरस्ती के बारे में पूछता। वे [illegible] गोल-मोल उसे बता देते। संकोचवश न गोपी अपनी औरत के बा[illegible] पूछता, न वे बताते। क़ैद का दुख ही क्या कम होता है, जो वे [illegible] कोई दिल पर चोट पहुँचाने वाली बात कहकर उसके दुख को बढ़ाते?

गोपी को जेल में सबकी याद सताती, लेकिन भाभी के दुख[illegible]

उसे जितनी चिन्ता थी, उतनी और किसी बात की न थी। भाभी के विधवा रूप का चित्र हमेशा उसकी आंखों में घूमा करता। जिस प्यारी भाभी को पाकर, जिसके हृदय के स्नेह-दान से आकण्ठ तृप्त होकर, एक दिन वह निहाल हो उठा था, उसी भाभी को विधवा रूप में वह किन आंखों से देख सकेगा? वह सूनी मांग, वह सूनी कलाइयाँ, वह मुरझाया मुखड़ा···

कारावास के परिश्रम से उसने कभी जी न चुराया। मेहनती देह पर कठोर परिश्रम का भी क्या असर पड़ना था? घर की तरह खाने-पीने को मिलता, बेफिक्री की जिन्दगी होती, तो जेल में भी गोपी जैसा-का-तैसा बना रहता। किन्तु घी-दूध के पाले शरीर का अब सूखी रोटी और कंकड़-मिली दाल से पाला पड़ा था। ऊपर से भाभी की चिन्ता चौबीसों पहर की। गोपी सूखकर कांटा हो गया। फिर भी ढांचा एक पहलवान का था। सड़ा हुआ तेली भी एक अधेली। किस की मजाल थी कि आंख दिखा दे। फिर सीधे गोपी से किसी को उलझने का मौका भी कैसे मिलता? वह दिन-रात अपनी ही मुसीबत में उलझा रहता। इतना बड़ा जेल भी जैसे एक एकाकीपन के घेरे में ही उसके लिए सीमित बना रहा।

मुकदमे के दौरान में वह जिला अस्पताल में पड़ा रहा था। पसली की चोट खतरनाक थी। दर्द जाता ही न था। छोटे अस्पताल में एक्सरे वगैरा था नहीं। फिर किसी के लिए कोई क्या जहमत उठाये? जैसे-तैसे दवा होती रही और मुकदमा चलता रहा। और फिर उसे हवालात में भेज दिया गया। सजा पाकर गोपी जब बनारस जिला जेल में भेज दिया गया, तो भी उसकी वही हालत थी। वह तो बस उसमें इतना था कि वह सब झेले जा रहा था।

बनारस जिला जेल के अस्पताल में उसके सौभाग्य से एक अच्छा

म्पाउंडर मिल गया। वह भी उसी के जवार का था। ...
ालों में कोई ख़ास दवा नहीं रखी जाती। वह तो कम्पाउंडर की तीमार-
दारी और गोपी के खून की ताकत थी कि दर्द कम होने लगा।

•

वहीं उसकी भेंट मटरूसिंह से हुई। यह घाघरा के दीयर का नामी पहल-
वान था। एक ही बिरादरी के और हमपेशा होने के कारण दोनों एक-
दूसरे से पहले ही से परिचित थे। गोपी का गाँव दीयर से करीब पाँच
मील ही पर था। मटरू एक झोंपड़ी बनाकर घाघरा के किनारे चटियल
मैदानों के बीच अपने बाल-बच्चों के साथ रहता था। जवार में यह
किम्वदन्ती मशहूर है कि मटरू की हाथी की तरह बढ़ती ताकत को
देखकर ईर्ष्यावश किसी पहलवान ने न जाने पान में उसे क्या खिला
दिया कि मटरू की साँस ही उखड़ गई। उसे दमा हो गया। उसने
बहुत इलाज कराया लेकिन उसकी साँस की बीमारी न गई। क्या करता,
विवश होकर पहलवानी छोड़ दी और ब्याह करके एक साधारण किसान
की तरह जीवन बिताने लगा। अब उसके तीन लड़के भी थे।

एक तरह से वह दीयर का राजा ही माना जाता था। किनारों के
मीलों खित्तों पर उसका एकछत्र राज था। घाघरा की धारा के साथ
ही उसका 'महल' उठता और गिरता था। बरसात में ज्यों-ज्यों घाघरा
ऊपर उठती आती, त्यों-त्यों मटरू की झोंपड़ी भी; यहाँ तक कि भादो
में जब घाघरा उफनकर समन्दर बन जाती, तो मटरू की झोंपड़ी किना
के किसी गाँव में पहुँच जाती। और फिर ज्यों-ज्यों सैलाब उतर
लगता, मटरू की झोंपड़ी भी उतरने लगती और कातिक लगते-लग
फिर अपनी पुरानी जगह पर पहुँच जाती। मटरू उसी तरह 'गंगा मैय
का आँचल एक क्षण को भी नहीं छोड़ता, जैसे शिशु माँ का।

पहले नदी के हटने पर जो मीलों रेत पड़ती, उस पर झाऊँ अ
सरकण्डे के जंगल उग आते। बैसाख-जेठ में जब ये जंगल जवानी

होते, जमींदार इन्हें कटवाकर बेच देते। लोग लावन और खपरैल छाने के लिए खरीद लेते। फिर बरसात शुरू हो जाती और सब ओर सैलाब उमड़ने लगता।

मटरू जब तक पहलवानी से मस्त रहा, उसे किसी बात की चिन्ता न थी। घाट से ही उसे इतनी आमदनी हो जाती, इतना दूध-दही और खाने-पीने का सामान मिल जाता कि खूब मजे से दिन कट जाते। कोई ग्वाला उसे दूध दिये बिना नाव पर न चढ़ता। कोई बनिया मटरू का 'कर' चुकाये बिना उधर से न गुजरता। मटरू के लिए इतना बहुत था। खाने, दण्ड पेलने और घाट पर ऐंठ-ऐंठकर मँजी हुई देह दिखाने के सिवा कोई काम न था।

लेकिन जब पहलवानी छूट गई, गिरस्ती बस गई, तो हराम की रोटी भी छूट गई। उसने झोंपड़ी के आस-पास का जंगल साफ किया। ससुर से बैल और हल लेकर खेती शुरू कर दी। नदी की छोड़ी हुई कुँआरी धरती जैसे हल के फाल की ही प्रतीक्षा कर रही थी। उसने वह फसल उगली कि लोगों ने दाँतों-तले उँगली काटी।

दो-तीन साल के अन्दर ही मटरू की झोंपड़ी बड़ी हो गई। दुधारू जमुना पारी भैंस और एक जोड़ा बैल दरवाजे पर झूमने लगे। मटरू का हौसला बढ़ा। उसने खेतों का विस्तार और भी बढ़ा दिया और अपने एक जवान साले को भी अपने पास ही बुला लिया। खूब डटकर मेहनत की और मेहनत का पसीना सोने का पानी बन फसलों पर लहरा उठा।

जमींदारों के कानों यह खबर पहुँची तो वे कुनमुनाये। उन्हें क्या खबर थी कि वह जमीन भी इस तरह सोना उगल सकती है। वे तो झाऊँ और सरकण्डों को ही बहुत समझते थे। तीरवाही के किसानों की जीभ से भी छाती-छाती-भर रब्बी की फसल देखकर लार टपकने लगी। लेकिन उनमें मटरू की तरह साहस तो था नहीं कि आगे बढ़ते, जंगल साफ करते और फसल उगाते। वे जमींदारों के यहाँ पहुँचे और लम्बी-

चौड़ी लगान देकर उन्होंने खेती करने के लिए जमीन माँगी। जमींदारों को जैसे बेमाँगे ही वरदान मिले। उन्हें और क्या चाहिए था! उन्होंने दनादन दूनी-चौगुनी रकमें सलामी ले-लेकर किसानों के नाम जमीन बन्दोबस्त करनी शुरू कर दी।

मटरू को इसकी खबर लगी, तो उसका माथा ठनका। वह गाँवों में जा-जाकर किसानों को समझाने लगा कि यह कैसी बेवकूफी वह कर रहे हैं। गंगा मैया की छोड़ी जमीन पर जमींदारों का क्या हक पहुँचता है कि वह उस पर सलामी और लगान लें? जिसको जोतना-बोना हो वह खुशी से आये और उसीकी तरह जंगल साफ करके जोते-बोये। जमींदारों से बन्दोबस्त कराने की क्या जरूरत है? वह क्यों एक नयी रीति निकाल रहे हैं और जमींदारों का मन बिगाड़ रहे हैं?

···किसानों को यह कहाँ मालूम था? वह तो मटरू से ही सबसे ज्यादा डरते थे। सोचते थे कि कहीं मटरू ने रोक दिया तो? उन्हें क्या मालूम था कि मटरू उनका स्वागत करने के लिए तैयार है। जब उन्हें मालूम हुआ तो उन्होंने पछताकर पूछा, "अब तो सलामी और लगान तीन-तीन साल की पेशगी दे चुके, मटरू भाई! पहले मालूम होता तो···"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है," मटरू ने समझाया, "तुम लोग अपनी रकम वापस माँग लो। साफ कह दो कि हमें जमीन नहीं लेनी। यही होगा न कि एक फसल न बो पाओगे। अगले साल तो तुम्हें कोई रोकने वाला न होगा। गंगा मैया की गोद सब किसानों के लिए खुली पड़ी है। वहाँ भला धरती की कोई कमी है कि खामखाह के लिए तुम लोगों ने ले-दे मचा दी। यह याद रखो कि एक बार अगर जमींदारों को तुमने चस्का लगा दिया तो तुम्हीं नहीं, तुम्हारे बाल-बच्चे भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फँस जाएँगे। उनकी लोभ की जीभ सुरसा की तरह बढ़ती जाएगी और एक दिन सबको निकल जाएगी। इसके उलटा अगर हम लोग सनमत रहें और जमींदारों का मुँह न

ताककर खुद ही उस धरती पर अपना अधिकार जमा लें तो ये जमींदार हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। गंगा मैया पर कोई उनका मावाई हक नहीं है। उसके पानी की ही तरह उसकी धरती पर भी हम सबका बराबर हक है। अपने इस स्वाभाविक हक को जमींदारों का समझना खुद अपने गले पर ही छुरी चलाना है। तुम लोग मेरा कहा मानो और मेरा पूरा-पूरा साथ दो। देखेंगे कि जमींदार हमारा क्या बिगाड़ लेते हैं?"

किसानों ने बहाने बनाकर जमींदारों से रुपये वापस माँगे तो वे मुस्कराये। जमींदार की तहवील मे पड़े रुपये की वही हालत होती है, जो सर्प के मुँह में पड़े चूहे की। चूहा लाख चीं-चीं करे, छटपटाये, लेकिन एक बार मुँह में फँसकर निकलना असम्भव। बेचारे किसान भी चीं-चीं करने के सिवा कर ही क्या सकते थे? जमींदारों ने डाँटकर भगा दिया। कोई रसीद-वसीद तो थी नहीं, किसान करते भी तो क्या? हाँ, इसका परिणाम इतना अवश्य हुआ कि दूसरे किसानों ने जमीन बन्दोबस्त कराना बन्द कर दिया।

इस तरह आमदनी रुकते और किसानों को जमीन लेने से बिचकते देख, जमींदारों के गुस्से का ठिकाना न रहा। पता लगाने पर जब उन्हें मालूम हुआ कि मटरू इसकी तह में है, तो एक दिन कई जमींदारों ने इकट्ठा हो, मटरू को बुला भेजा।

मटरू दीयर में अभी तक जंगल के एक शेर की तरह रहा था। जमींदारों की यह हिम्मत न थी कि उसे सीधे तौर पर छेड़ें। जवार में यह धाक जमी थी कि मटरू पहलवान के पास सैकड़ों लठैत हैं। वह जब चाहे दिन-दहाड़े लुटवा सकता है। यही बात थी कि सारे जवार में उसका दबदबा था। उधर से गुजरने वाला कोई भी उसे बिना सलाम किये न जाता।

बुलावा सुनकर मटरू अकड़ गया। उसने साफ लफ्जों में यह कहलवा भेजा कि मटरू किसी जमींदार का कोई आसामी नहीं है। जिसे

गरज़ हो, वही उससे आकर मिले।

ऐसे मौकों पर काम लेना ज़मींदारों को खूब आता है। उन्होंने खूब पढ़ा-लिखाकर अपने एक चलते-पुर्ज़े कारिन्दे को मटरू के पास भेजा।

कारिन्दे ने खूब झुककर 'जय गंगाजी' कहकर सलाम किया। फिर दोनों हाथों को उलझाता बड़ी दयनीयता से मुँह बनाकर बोला, "पार जा रहा था। सोचा पहलवानजी को जय गंगाजी कहता चलूँ।"

सुबह का वक्त था। माघ का महीना। नदी पर गहरे भाप का धुआँ उठ रहा था। चारों ओर कुहरे की झीनी चादर फैली हुई थी। उसीमें सूरज की कमज़ोर किरनें अटककर रह गई थीं। सन-सन पछुआ बह रही थी। गेहूँ की छाती-भर उगी फसल निगाहों की सीमा तक चारों ओर झूम रही थी। कुहरे के जमे मोती उनके पत्तों पर चमक रहे थे। बालों ने दूधा ले लिया था। अब ओस पीकर पुष्ट हो रही थीं।

मटरू गाढ़े की लुंगी और कुरता पहने बैलों की नादों के पास खड़ा था। कुरते की बाँहें बाज़ू तक चढ़ी थीं। दाहिना हाथ कुहनी के ऊपर तक सानी से भीगा था। अभी-अभी उसने नादों में खुद्दी मिलायी थी। आँखों तक मुँह डुबोकर बैल भड़र-भड़र की आवाज़ करते खा रहे थे। एक के पुट्ठे पर बायाँ हाथ रखते मटरू ने निगाह उठाकर कारिन्दे की ओर देखकर कहा, "घाट छूटने में अभी देर है। चीलम पिओगे?" कहकर वह गोड़े के पास आ बैठा।

कारिन्दा भी उसकी बगल में पतलों की चटाई पर बैठ गया। मटरू ने पास से खोदना उठाकर आग उकसा दी। फिर दोनों हाथ-पाँव फैलाकर तापने लगे। मटरू ने आवाज़ दी, "लखना, जरा तमाकू-चीलम तो दे जाना।"

लखना मटरू का बड़ा लड़का था। उम्र चार साल, नंगा-घड़ंगा वह

एक हाथ में चिलम और दूसरे मे तमाकू लिये झोपड़े से निकलकर दौड़ा-दौड़ा आकर काका के हाथ में चिलम-तमाकू थमाकर वहीं बैठ गया और उन्हींकी तरह हाथ-पाँव फैलाकर आग तापने लगा।

मूरत की तरह सुडौल, साँवले, सुन्दर बालक की ओर देखकर कारिन्दा बोला, "क्यों रे, तुझे जाड़ा नहीं लगता ?"

बालक ने एक बार आँखें झपकाकर उसकी ओर देखा, फिर मुस्कराकर सिर झुका लिया।

मटरू ही बोला, "कुछ पहनता-ओढ़ता नहीं। सोये मे भी कुछ ओढ़ाओ तो फेंक देता है।"

"तुम्हारा ही तो लड़का है पहलवानजी," कारिन्दे ने लासा लगाया।

"हाँ, पाँच साल पहले तक मैंने भी न समझा कि कपड़ा क्या होता है। एक लँगोट और लुंगी काफी होती थी। गंगा मैया की मिट्टी और पानी का असर ही कुछ ऐसा है कि सरदी-गरमी, रोग-सोग कोई पजरा नहीं आता। क्या करूँ, इस साँस की बीमारी से देह ही खखड़ गई।" कहकर चिलम पर मटरू अँगारे रखने लगा।

"बुरा हो उस दुश्मन का..."

बीच ही में बात रोककर मटरू बोला, "छोड़ो भाई, इस बात को। तमाकू पियो। भगवान् सबका भला करें।"

"हाँ, भाई," चिलम को मुँह लगाते कारिन्दा बोला, "आदमी हो तो तुम्हारी तरह, जो दुश्मन का भी भला ही मनावे।" कहकर कारिन्दा चिलम सुलगाने लगा।

"किस गाँव के रहने वाले हो ? कायस्थ मालूम होते हो ?" मटरू ने पूछा।

"हाँ, रहने वाला तो बालूपुर का हूँ, लेकिन काम जिन्दापुर के ज़मींदार के यहाँ करता हूँ। धुएँ का गुरगुरा छोड़कर मतलब पर आकर कारिन्दे ने साफ-साफ ही कहा, "सुना था ज़मींदार ने तुम्हें

बुलाया था, तुमने जाने से इन्कार कर दिया।"

मटरू के माथे पर बल आ गए। उसने तीखी दृष्टि से कारिन्दे की ओर देखकर कहा, "हम किसी के तावे हैं, जो···"

"नहीं, भाई, नहीं, मेरा मतलब वह नहीं था," कारिन्दा बीच ही में बोल उठा, "कौन नहीं जानता कि तुम राजा आदमी हो। तुमने अपने लायक ही यह काम किया। लेकिन वहाँ सुनने में यह भी आया था कि सब जमींदार, जिनका दीयर में हिस्सा है, मिलकर तुम्हारे नाम एक बहुत बड़ा खित्ता लिख देने की सोच रहे हैं। तुम···"

"लिखने वाले वह कौन होते हैं?" मटरू ताव में आकर बोला, "यहाँ तो सिर्फ गंगा मैया की अमलदारी है। उनके सिवा तो मैंने आज तक किसी को जाना नहीं। और सुन लो, तबीअत चाहे तो उनसे कह भी देना कि दीयर में कोई जमींदार या जमींदार का बच्चा दिखाई पड़ गया तो बिना टाँग तोड़े न छोड़ूँगा।"

"अरे भाई, तुम तो बेकार गुस्सा हो रहे हो। मुझे क्या पड़ी है यह सब किसी से कहने की? यों ही बात चली तो मैंने कह दी। यह भी सुनने में आया था कि पहलवानजी चाहें तो सलामी और लगान की रकम में भी उनका हिस्सा तै कर दिया जाए···"

मटरू हँस पड़ा। फिर आँखें चढ़ाकर बोला, "मटरू पहलवान हराम की नहीं खाता। गंगा मैया के सिवाय उसने किसी के सामने कभी हाथ नहीं फैलाया। देखेंगे कि अब किस तरह जमींदार किसी किसान से सलामी और लगान लेते हैं और यहाँ की जमींन पर कब्जा दिलाते हैं! मर्द की बात एक होती है! गंगा मैया की सौगन्ध लेकर कहता हूँ, लाला कि···"

"भाई, मैं तो गुलाम आदमी ठहरा। भला तुम जैसे राजा आदमी के सामने कुछ कहने की हिम्मत ही कैसे कर सकता हूँ? जमींदारों का जूता सीधा करते ही उमर मेरी बीत गई। बुरा न मानना, ये जमींदार बड़े जालिम, शैतान होते हैं। तुम जैसे सीधे-सादे आदमी के

लिए उनसे उलझना ठीक नहीं। वह ऊँच-नीच, झूठ-सच, मक्र-फरेब, कुछ नहीं देखते। अमलों के साथ रोज का उनका उठना-बैठना होता है। भला तुम उनसे कैसे पार पाओगे? फिर कागज-पत्तर पर भी उनका नाम दरज है। कानून-कायदे के पैंतरे में ही वह तुम्हें नचा मारेंगे।"

"कानून-कायदे की बात वह घर बैठे बघारा करें। मुझे कोई परवाह नहीं। मैं तो यही जानता हूँ कि यह धरती गंगा मैया की है। जो चाहे, आये, मेहनत करे, कमाये, खाये। जमींदारों ने अगर इधर आँख उठायी तो मैं उनकी आँखें फोड़ दूँगा। कहाँ रखा था कायदा-कानून उनका अब तक? मैंने मेहनत की, फसल उगायी, तो देखकर दाँत गड़ गए। चले हैं अब जमींदारी का हक जताने! आयें न जरा हल कांधे पर लेकर! दिल्लगी है यहाँ खेती करना! भोले किसानों को बेवकूफ बना कर रुपये ऐंठ लिये। बेचारे वे मेहनत करेंगे और मसनद पर बैठे गुलछर्रे उड़ाएंगे तुम्हारे जमींदार। यहाँ मैं नहीं चलने दूँगा यह सब! उनसे कह देना कि यहाँ गंगा मैया की अमलदारी है। किसी ने पाँव बढ़ाये तो देखते हो न वह धारा! एक की भी जान न बचेगी···जाओ, अब घटहा खुलेगा।"

कारिन्दा अपना-सा मुँह लेकर उठ खड़ा हुआ। मटरू बड़बड़ाये जा रहा था, "हूँ, चले हैं गंगा मैया की छाती पर मूँग दलने···"

•

दीयर में मटरू और उसके लठैतों से पार पाना मुमकिन नहीं, यह जमींदार भी जानते थे और पुलिस भी। यह बिलकुल वैसा ही था, जैसे जान-बूझकर साँप के बिल में हाथ डालना।

मीलों लम्बे-चौड़े झाऊँ और सरकण्डे के घने जंगलों के बीच कोई सुतवस रास्ता न था। अजनबी कोई वहाँ कहीं पड़ जाए, तो फँसा रह जाए। जाने-बूझे लोग ही जंगल के बीच से होकर घाट तक जाते या

टेढ़ी-मेढ़ी, बीहड़, दृश्य और अदृश्य पगडण्डी को जानते थे। फिर भी शाम होते किसी की हिम्मत उस पर चलने की न होती। लोगों का तो यह भी कहना था कि उन जंगलों में कितने ही डाकुओं के गिरोहों के अड्डे हैं। वहाँ मटरू से लोहा लेने का मतलब जान गँवाने के सिवा कुछ न था, सो मौके की बात समझकर ज़मींदार कला काछ गए; पुलिस से साँठ-गाँठ चलती रही और मौके की तैयारी होती रही।

हमेशा की तरह जेठ चढ़ते-चढ़ते फसल काट-कूट, दाँ मिसकर मटरू ने अनाज और भूसा ससुराल पहुँचा दिया। बाल-बच्चों को भी भेज दिया। खानाबदोशी के दिन सिर पर आ गए थे। क्या ठिकाना कब गंगा मैया फूलने लगें। रात-रात-भर में परोसों पानी बढ़ता है। हहराती हुई धारा से बचकर झोंपड़ी ऊपर हटाना जितनी जल्दी का काम था, उतना ही जोखिम का भी। वैसी हालत में बाल-बच्चों को साथ रखना ठीक न होता। छुटी देह लेकर मटरू रहता था। ससुर तो उससे भी चले आने को कहते, लेकिन मटरू को जब तक नदी की हवा न छुए, नींद न आती थी। उसकी स्वच्छन्द आत्मा को गंगा मैया की लहर एक क्षण को छोड़ना सह्य न था। कुएँ का पानी उसे रुचता न था।

अब की एक बात और मटरू ने कर डाली। उसने जवार में यह खबर भेज दी कि जो चाहे झाऊँ और सरकण्डा काट कर ले जाए; ज़मींदारों से खरीदने की कोई ज़रूरत नहीं। गंगा मैया के धन पर सबका बराबर अधिकार है।

चारों ओर से किसानों, मजदूरों और गरीबों ने जुटकर हल्ला बोल दिया। जिसे देखो वही सिर पर झाऊ या सरकण्डे लिये भागा जा रहा है।

ज़मींदारों ने यह सुना तो जल-भुनकर रह गए। हजारों के घाटे का सवाल ही नहीं था, बल्कि हर साल की एक मुस्तकिल आमदनी की मदद खतम होने जा रही थी। उन्होंने पुलिस से राय ली कि क्या

तीन वार मटरू को झोंपड़ी हटानी पड़ने लगी। ज़ोरों से पानी बढ़ा आ रहा था। घण्टे में दस-दस, बीस-बीस हाथ डुबो देना मामूली बात थी।

दिन को तो कोई बात न थी, पर रात को मटरू सो न पाता। नदी का यह हाल, कौन जाने कब झोंपड़ी डूब जाए ? मटरू बैठा-बैठा टक-टक चमकते पानी की ओर देखा करता। ऊपर बादल गरजते, बिजली कड़कती। नीचे धारों की हहर-हहर भयंकर आवाज़ गूँजती। रह-रहकर अरारों के टूटकर गिरने का छपाक-छपाक होता रहता। झींगुरों की कर्णभेदी सीटियाँ और मेढकों की टर्र-टर्र चारों दिशाओं में लगातार ऐसे गूँज रही थी, जैसे उनमें प्रतियोगिता छिड़ी हो। चारों ओर छाये घने अन्धकार में कभी इधर, तो कभी उधर भक से कुछ जल उठता। और मटरू बैठा-बैठा 'गंगा मैया' का यह विकराल रूप देखकर सोचता कि जो माँ स्नेह से भरकर बेटे को छाती का दूध पिलाती है, वही कभी गुस्सा होकर किस तरह बेटे के गाल पर थप्पड़ भी मार देती है।

सावन चढ़ते-चढ़ते मटरू की झोंपड़ी किनारे एक गाँव के पास आ लगी। ये दिन मटरू को बेतरह खलते। उसे ऐसा लगता जैसे गुस्से में आकर माँ उसे खदेड़ती जा रही हो और धमकी दे रही हो कि "अगर पकड़े गए, तो छठी का दूध याद करा दूँगी !" उसे तो क्वार से शुरू होने वाले दिन अच्छे लगते, जब आगे-आगे माँ भागती होती और पीछे-पीछे वह स्नेह और श्रद्धा के हाथ फैलाये उसे पकड़ने को दौड़ता होता कि कब पकड़ ले और उसके आँचल में मुँह छिपाकर, विह्वलता में रोकर उससे पूछे, "माँ इतने दिन तुम नाराज़ क्यों रहीं ?" माँ-बेटे का यह भाग-दौड़ का खेल हर साल होता। कभी माँ दौड़ाती तो बेटा भागता; कभी बेटा दौड़ता तो माँ भागती। इस खेल में कितना मज़ा आता था !

आखिर नदी जब समुन्दर बन गई और कहीं भी किनारे मटरू के लिए जगह न बच गई तो लाचार हो, माँ का दामन छोड़कर, उसे

कगार के गाँव में झोंपड़ी खड़ी करनी पड़ी। वियोग के इन दिनों मटरू आँखों में आँसू भरे कगार पर बैठा घण्टों धारा के रूप में फहराते माँ के आँचल को निहारा करता। तूफ़ानी वेग से धारा बाँसों उछलती-कूदती, प्रलय का शोर करती भागती जाती। बीच-बीच में कहीं-कहीं काले बुंदकों की तरह उभरकर सूँस अदृश्य हो जाते। कहीं भँवर में पड़कर कोई पेड़ का तना इस तरह नाचने लगता जैसे कोई उँगलियों पर चक्र नचा रहा हो। मटरू के मन में एक बालक की तरह उठता कि वह धारा में कूदकर उसे छीन ले और अपनी उँगलियों पर उसे नचाता धारा में किलोल करे। माँ की शक्ति से बेटे की शक्ति क्या कम है? कभी किसी झोंपड़ी को बहते जाते देखता तो तड़पकर कहता, "माँ यह तूने क्या किया? किसी बेटे का बसेरा उजाड़ते तुझे दर्द न लगा? ऐसा ग़ुस्सा भी क्या माँ?"

बस्ती की हवा उसे अच्छी न लगती, जैसे हरदम उसका दम घुटता रहता। जंगली फूल की तरह बस्ती में आकर वह मुरझाया-मुरझाया-सा रहता। सीमाहीन उस मैदान, उस साफ़ हवा, उस नरम मिट्टी, उस मुक्त धूप और उस स्वच्छन्दता के लिए उसके प्राण तड़पते रहते। कभी-कभी तो वह इतना घबराता कि उसके जी में आता कि धारा में कूद पड़े और इतना तैरे, इतना तैरे कि तन-मन ठण्डा हो जाएगा और फिर धाराओं की सेज पर ही सो जाय। लेकिन तभी उसे अपनी प्यारी बीवी और नन्हे-मुन्ने बच्चों की याद आ जाती और वह जाने कैसा मन लिये कगार पर से उठ जाता। उस समय उसे ऐसा लगता कि कहीं वहाँ बैठे रहकर वह सचमुच न कूद पड़े।

इन दिनों कभी-कभी बहुत आग्रह पर वह ससुराल जाता तो एकाध रात से ज्यादा न रह पाता। उसे लगता जैसे माँ उसे पुकार रही हो। वह लौटकर जब तक घण्टों धारा में न लोट लेता उसे चैन न मिलता।

उस रात कगार पर बैठे-बैठे उसकी पलकें जब झपकने लगीं, तो उठकर वह झोंपड़ी के दरवाज़े पर पड़ी पत्तलों की चटाई पर लेट गया। बड़ी सुहानी, ठण्डी हवा चल रही थी। धाराएँ जैसे लोरी गा रही थीं और अरार रह-रहकर ताल दे रहे थे। मटरू को बड़ी मीठी नींद आ गई।

नींद में ही अचानक उसे ऐसा लगा मानो छाती पर कई मन का बोझ सहसा आ पड़ा हो। उसने कसमसाकर आँखें खोलीं तो छाती पर टार्च की रोशनियों में दो नौजवानों को चढ़ा पाया। हाथों का सहारा ले वह ज़ोर लगाकर उठने को हुआ तो जंजीरें झनझना उठीं। मालूम हुआ कि हाथ बँधे हुए हैं। घबराकर उसने इधर-उधर देखा तो चारों ओर भाले से लैस कान्सटेबल दिखाई पड़े। उसकी समझ में सब आ गया। गुस्से और नफरत से काँपता वह दाँत पीसकर रह गया।

जब से वह कगार की बस्ती में आया था पुलिस उसके पीछे पड़ी थी। आज मौका पाकर उसने उसे दबोच लिया था। रात-ही-रात मटरू को हथकड़ी-बेड़ी चढ़ाकर ज़िले की हवालात में पहुँचा दिया गया, और गाँव वालों पर इतनी सख्ती की गई कि कोई चूँ तक न कर सका।

रपट-मुकदमा, गर-गवाही, सब-कुछ पहले ही से तैयार था। मटरू के ससुर खबर लगने पर थाने पहुँचे तो उन्हें मालूम हुआ कि मटरू डाके के अपराध में गिरफ्तार हुआ है। पुलिस ने मटरू की झोंपड़ी पर छापा मारकर जो जेवर और माल बरामद किये हैं, वह जिन्दापुर के जमींदार नथुनीसिंह के हैं; एक-एक कर पहचान लिये गए हैं। जल्द ही कचहरी में मुकदमा खड़ा होगा। इस्तगासा तैयार हो रहा है।

जिसने यह सुना आँख फाड़कर रह गया—कोई दुःख से तो कोई आश्चर्य से। लेकिन उस दौरान में जवार पर पुलिस की सख्ती इतनी चढ़ा दी गई थी कि किसी की हिम्मत पुलिस या ज़मींदार के खिलाफ एक बात भी ज़बान पर लाने की न थी। शोर यह मचाया गया कि

मटरू सरदार के गिरोह के करीब पचास डाकू फरार हैं। पुलिस उन्हीं-को गिरफ्तारी के लिए सरगरमी से दौड़ लगा रही है। दूसरे-तीसरे दिन यह जो अफवाह गाँवों में फैल जाती कि आज दो डाकू गिरफ्तार हुए तो आज तीन। एक अजब हड़कम्प मचा दिया पुलिस ने चारों ओर।

महीनों रच-रचकर सब हरबे-हथियार के साथ जो मुकदमा तैयार किया गया था उसमें बाल की खाल निकालने पर भी कोई नुक्स निकाल लेना मुश्किल था। फिर छोटे से लेकर जिले के बड़े-बड़े अधिकारियों तक की मुट्ठियाँ इतनी गरमा दी गई थीं कि सब-के-सब कुछ भी खड़ा-का-खड़ा निगल जाने को तैयार थे।

डिप्टी साहब की कचहरी से होकर मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ। साले और ससुर से जो भी करते बना उन्होंने किया। लेकिन नतीजा वही निकला जो पहले ही सील-मुहर बन्द करके रख दिया गया था।

मटरू को तीन साल की सख्त सजा हो गई और तीन दिन के अन्दर ही रात की गाड़ी से बनारस जिला-जेल को उसका चलान भेज दिया गया।

छः

●

भाभी का जीवन एक साधना का जीवन बन गया।

कलेजे में पति की चुभती हुई यादें दबाये वह रात-दिन अपने को किसी-न-किसी काम में बुझाये रखती। आँखों से टप-टप खून के आँसू

जाने से रोक दिया था। लड़की को पढ़ने-लिखने की भला क्या जरूरत ? फिर सब कुछ भूल गई। अब, जब वक्त काटे न कटता, तो उसने फिर सालों बाद उस अक्षर-ज्ञान को धीरे-धीरे ताजा किया। घर में रामायण के सिवा और कोई किताब न थी। वह उसी पर अभ्यास करने लगी। एक चौपाई में उसके मिनटों बीत जाते। अक्षर-अक्षर मिलाकर वह शब्द बनाती। फिर कई बार उसे दुहराकर आगे बढ़ती। फिर दो शब्दों को एक साथ कई बार दुहराकर आगे बढ़ती। इस तरह एक चरण खतम करके वह पूरे चरण को बीसों बार दुहराती।

इसमें वक्त कटने के साथ ही, कुछ भी न समझते हुए भी, उसे एक आध्यात्मिक सुख और सान्त्वना मिलती। उसका खयाल था कि धीरे-धीरे अभ्यास हो जाने पर वक्त काटने का एक अच्छा साधन हाथ लग जाएगा। दुखी प्राणी के लिए वक्त काटने की समस्या से बढ़कर कोई समस्या नहीं होती। और वह तो ऐसी दुखी प्राणी थी, जिसे सारा जीवन ही इस तरह काटना था। विधवा के जीवन में सुख के एक क्षण की भी कल्पना कैसे की जा सकती है ?

सुबह सास-ससुर के उठने के पहले ही वह सारा घर बुहारकर साफ कर लेती। हलवाहा आता, तो उससे भैंस दुहवाती, उसे नाँदों में चलाने के लिए भूसाघर से भूसा निकालकर देती। फिर ज़रूरी सामान देकर उसे खेत पर भेज देती। पुराना हलवाहा बड़ा ही नमक हलाल था। उसी पर आजकल पूरी खेती का भार छोड़ दिया गया था। घर के आदमी की तरह वही सब-कुछ करता और भाभी को पूरा-पूरा हिसाब देता।

ससुर की नींद खुलती तो वे बहू को पुकारते। भाभी जल्दी-जल्दी आग तैयार कर, हुक्का भरकर उनके हाथ में थमा आती। सास ने कुछ इस तरह देह छोड़ दी थी कि भाभी को ससुर के सभी काम सब लोक-लाज छोड़कर करने पड़ते थे।

चारपाई पर ही वह उनके हाथ-मुँह धुलाती, दूध गरम करके

पिलाती। फिर हुक्का ताजा कर, उनके हाथ में दे, दवा की मालिश करने लगती। ससुर कहर-कहरकर हुक्का गुड़गुड़ाते रहते। कहीं किसी जोड़ पर भाभी का हाथ जरा ज़ोर से लग जाता तो चीखकर कहते, "अरे बहू जरा सँभाल कर मल। ओह, आह !"

फिर वह घर के काम में लग जाती। फटकने-पछोड़ने, कूटने-पीसने से लेकर खिलाने-पिलाने तक के सभी काम वह करती। सास बिसूर-बिसूरकर किसी कोने बैठी रोती रहती या टुकर-टुकर भाभी को काम करते निहारा करती।

भाभी अब पहले की भाभी नहीं रह गई—न वह रूप, न रंग, न वह जवानी, न देह। अब तो जैसे पहले की भाभी की एक चलती-फिरती छाया रह गई। दुबली-पतली, सूखी देह, बेग्राब, पीला चेहरा, उदास, आँसुओं में सदा तैरती-सी आँखें, मुरझाये, सिले-से होंठ, रोएँ-रोएँ से जैसे करुणा टपक रही हो, एक जिन्दगी की जैसे मुरदा तसवीर हो, या जैसे एक मुरदा जिन्दा होकर चल-फिर रहा हो।

हाय, वह क्यों जिन्दा है ? आह, उसके भी प्राण उन्हींके साथ क्यों न निकल गए ? बहन ने कैसा पुण्य किया था कि उसे भगवान् ने बुला लिया। हाय, यह कैसी महापापिन है कि नरक भोगने को रह गई ? इस नरक से वह कब उबरेगी, इस यातना से आखिर कब छुटकारा मिलेगा ?

महीनों बाद व्यथा की बरसाती धारा जब धीरे-धीरे साधारण होकर शान्त हुई और जब भाभी धीरे-धीरे सब-कुछ करने-सहने की अभ्यस्त हो गई, तो उसके जीवन की व्यर्थता और असीम निराशा के, जो प्राणों के चूर-चूर हो जाने से आयी थी, उक भी धीरे-धीरे कुन्द होने लगे। अब भाभी कभी-कभी कुछ सोचती भी, अब कभी-कभी उसके हृदय में जीवन के उन सुखों के अंकुर फिर उभरते-से अनुभव होते, जिन्हें एक

बार वह अपने जीवन में फल-फूल से लदे देख चुकी थी। पति की याद से भी अब कभी-कभी उसके मानस में उन्हीं कोमल भावनाओं का स्फुरण होता, जो उसके सहवास में उसे मिला था। अब बार-बार उसके मन के सात परदों में दबे स्थान से सवाल उठता, "क्या जीवन में वे दिन फिर कभी न आएंगे? क्या वह सुख फिर कभी न मिलेगा? वह, वह···" और उसके मुंह से एक दबी हुई ठण्डी सांस निकल जाती, प्राणों में जाने कैसी एक ऐंठ और दर्द महसूस होता। वह कुछ व्याकुल-सी हो उठती। काश···

ऐसे अवसर पर जाने कैसे उसका ध्यान अपने देवर की ओर चला जाता। वह सोचती कि उसकी हालत भी तो ठीक उसीकी जैसी होगी। उसका भी तो सुख का संसार उसीकी तरह उजड़ गया। उसके मन में भी तो आज ठीक उसीकी तरह के भाव उठते होंगे। वह भी तो उसीकी तरह तड़पता होगा कि काश···

और तभी जैसे कोई उससे कह जाता, "वह तो मर्द है। जैसे ही वह जेल से लौटेगा, उसका दूसरा ब्याह हो जाएगा और फिर उसकी एक नयी ज़िन्दगी शुरू होगी, जिसमें पहले ही-सा सुख···"

और वह मर्माहत हो उठती। उसके होंठ बिचक-से जाते, जैसे उसमें एक नफ़रत, एक गुस्से का भाव भर उठता हो और यह प्रश्न उसकी आत्मा की तड़प में लिपटकर उठ पड़ता हो, "ऐसा क्यों होता है? यह अन्तर क्यों? क्यों एक को अपनी उजड़ी दुनिया को गले से लिपटाये तिल-तिल जलकर राख हो जाने को विवश होना पड़ता है और दूसरे को अपनी उजड़ी दुनिया फिर से बसाकर सुख-चैन से ज़िन्दगी बिताने का अधिकार मिलता है?"

और वह तिलमिला उठती। नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए, हरगिज़ नहीं। उसे भी अधिकार होना चाहिए कि···

ये कैसी बातें उठने लगी हैं मन में? भाभी को जब होश आता, तो उसे स्वयम् पर आश्चर्य होता। अभी कल की ही तो बात है कि

पति के वियोग में तड़पकर वह मर जाना चाहती थी। लेकिन आज आज यह क्या हो गया है कि वह एकदम बदल गई है, ऐसी-ऐसी बातें सोच रही है, ऐसे-ऐसे विचार मन में उठते हैं, ऐसी-ऐसी इच्छाएं अन्तर में सिर उठा रही हैं। और वह अभी कल की ही अपनी मनःस्थिति की बात सोचकर अपने ही सामने आज शर्मिन्दा हो उठती है। कहीं किसी को आज उसके मन में उठने वाले भाव मालूम हो जाएं, तो? नहीं, नहीं! लोग क्या कहेंगे? लोग उसे कितनी पापिन समझेंगे? लोग उसे क्या-क्या ताना देंगे कि पति को मरे अभी दो-तीन साल भी न हुए और यह कलमुंही ऐसी-ऐसी बातें सोचने लगी। यह विधवा जीवन की पवित्रता आगे क्या कायम रख सकती है? ओह, जमाना कितना बिगड़ गया है! देखो न, कल की विधवा आज···

और वह एक विवशता और व्याकुलता से तड़प उठती। वह इस अपने मन को क्या करे? वह कैसे इन अपवित्र भावों को दबा दे? वह ठाकुरघर में आजकल प्रार्थना करती कि 'भगवान्, उसे शक्ति दे कि वह कुल-रीति पर कायम रहे, मन में उठती अपवित्र भावनाओं पर काबू पा सके, विधवा-जीवन पर कलंक न लगने दे!' लेकिन भगवान् से उसे वह शक्ति नहीं मिल रही थी। मन हरिण की तरह जब-तब छलांगें मारने लगता। वह बरबस पति को याद करती। सोचती, कि जब तक उनकी याद बाकी रहेगी, वह न डिगेगी। लेकिन अब उसको याद भी धुंधली पड़ती जा रही थी। बहुत कोशिश करके भी वह बहुत देर तक उन यादों में न बिता पाती। न जाने कब यादें अपना रूप बदल देतीं! व्यथा उत्पन्न करने वाली यादें उन सुखों को याद दिलाने वाली बन जातीं, जो उसे अपने पति से मिले थे। और फिर उन सुखों की याद करके उन्हें फिर से प्राप्त करने की चाह मन में उठ पड़ती। अन्तर एक मीठी सिहरन से भर जाता। और जब उसे इसका खयाल आता, तो वह अपने को धिक्कारने लगती। इस तरह एक अजीब रहस्य-मय द्वन्द्व उसके मन में बस गया। और वह जान-बूझकर यह

भी अनुभव करती रही कि कौन पक्ष जीत रहा है, कौन हार रहा है।

अब पहली हालत उसकी न रही। अब घर के काम-काज, सास-ससुर की सेवा में उसकी वह तन्मयता न रही। अब जैसे वह सब आधे मन से करती, अब कभी-कभी सास किसी काम में देर होने पर उसे डाँटती तो वह जवाब भी दे देती, "दो ही हाथ तो हैं मेरे। क्यों नहीं तुम्हीं कर लेतीं? लौंडी की तरह रात-दिन तो खट रही हूँ। फिर भी यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ! सुनते-सुनते मेरे कान पक गए..."

सास सुनती, तो बड़बड़ाने लगती। अनाप-शनाप जो भी मुंह में आता, कह जाती। भाभी में अभी उससे जबान लड़ाने की हिम्मत न थी। फिर भी होंठों में बुदबुदाने से अब वह भी बाज न आती।

धीरे-धीरे दोनों चिड़चिड़ी हो गईं और झल्ला-झल्लाकर बातें करने लगीं। एक दुखमय शान्ति, जो इतने दिनों छायी रही घर में, वह अब खतम हो गई। अब तो टोले-मुहल्ले वालों के कानों तक भी इस घर की बातें पहुँचने लगीं। ये बातें दो अतृप्त बीमार ज़िन्दगियों की थीं—चिढ़, गुस्से, विवशता और व्यर्थता से भरी।

एक दिन सुबह भूसाघर से खाँची में भूसा निकालकर दालान में खड़े हलवाहे को देने भाभी आयी, तो खाँची हाथ में लेते हलवाहे ने कहा, "छोटी मालकिन, कई दिनों से एक बात कहने को जी होता है, बुरा तो न मानेंगी?"

कपड़े पर पड़े भूसे के तिनकों को साफ करती भाभी बोली, "क्या बात है? कह न। तुझे कुछ चाहिए क्या?"

"नहीं मालकिन," हलवाहे ने आंखों में नंगी करुणा और होंठों पर सच्चा मोह लाकर, बड़ी ही सहानुभूति के स्वर में कहा, "मालकिन,

आपकी यह देह देखकर मुझे बड़ा दुख होता है। अभी आपकी उम्र ही क्या है ? इसी उम्र से इस तरह आपकी जिन्दगी कैसे कटेगी ? इतने ही दिनों में आपकी सोने की देह कैसे माटी हो गई ! मालिकन, आपको इस रूप में देखकर मुझे बहुत दुख होता है," कहते-कहते ऐसा लगा कि वह रो देगा।

भाभी के चेहरे की उदास छाया और भी काली हो गई। वह बोली, "क्या करूँ बिलरा, भाग्य के आगे किसका बस चलता है ? विधाता ने सेनुर मिटा दिया, करम फोड़ दिया, तो अब इसी तरह रो-धोकर के तो जिन्दगी काटनी है। तू दुख काहे को करता है। करम का साथी कौन होता है ? विधाता से ही जब मेरा सुख न देखा गया, तो···" वह आँखों पर आँचल रखती सिसक पड़ी।

एक ठण्डी साँस लेकर बिलरा बोला, "यह कैसा रिवाज है मालिकन, आपकी बिरादरी का ? इस मामले में तो हमारी ही बिरादरी अच्छी है, जो कोई बेवा इस तरह अपनी जिन्दगी खराब करने को मजबूर नहीं। मेरी ही देखिए न। भैया भाभी को छोड़ गुजर गए तो भौजी का ब्याह मुझसे हो गया। मजे से हमारी जिन्दगी कट रही है। और आप ऊँची बिरादरी में क्या पैदा हुईं कि आपकी जिन्दगी ही खराब हो गई···क्या कहूँ मालिकन, मन में उठता तो है कि छोटे मालिक से अगर आपका ब्याह हो जाता···"

"बिलरा !" ऊँची बिरादरी का अहंकार भभक पड़ा, "फिर कभी यह बात जबान पर न लाना ! जिस कुल का तू नमक खाता है उसकी मर्यादा का खयाल न कर, ऐसी बात फिर मुँह से निकाली तो मैं तेरी जबान खींच लूँगी ! तुझे क्या मालूम कि इस कुल की विधवा जिन्दा जलकर चिता में भस्म हो जाती है, लेकिन···जा, हट जा, तू !" कहकर भाभी अपनी चारपाई पर आ गिरी और फफक-फफककर रोने लगी।

सास-ससुर अभी सो रहे थे। काफी देर तक भाभी रोती रही।

यह रोना एक अपमानित आत्मा के अहंकार का था। नीच, कमीने आदमी ने जिस तार को छेड़ा था, वह कितनी ही बार आप-ही-आप भी झंकृत हुआ था, भाभी ने उसका स्वाद भी मन-ही-मन लिया था। लेकिन वह तार इतना गोपनीय, इतना अहंकारों और संस्कारों के बीच छिपाकर सावधानी से रखा गया था कि उसे कभी कोई छू पाएगा, इसकी कल्पना भाभी को न थी। उसी तार पर उस नीच कमीने आदमी ने सीधे उँगली रख दी थी। यह कोई साधारण अपमान की बात थी? भाभी की क्षुब्धता ही रुदन में फूटी थी। इस क्षुब्धता की एक धार जहाँ उस कमीने की गरदन पर थी, वहीं उसकी दूसरी धार स्वयं भाभी की गरदन पर, इसका ज्ञान भाभी को था। वरना वह कमीना क्या थप्पड़ खाये बिना जा पाता? रजपूतनी के खून की बात थी कि कोई ठट्ठा?

भाभी उस दिन से और सावधान हो गई, ठीक उसी तरह जैसे एक बार चोरी पकड़ जाने पर चोर। अब वह बिलरा के सामने भी न जाती। सास को सुबह ही जगा देती। उसीके हाथ दूध निकालने के लिए घूंचा और जलाने के लिए भूसा भी भिजवाती। कोई भी हो, आखिर मरद ही तो है। किसी मरद के सामने विधवा न जाना चाहे, तो इसकी प्रशंसा कौन न करे?

जो भी हो उस कमीने आदमी की उस बात ने भाभी की गोपनीय पापमय कल्पनाओं को परवान चढ़ने के लिए एक मजबूत आधार दे दिया। जाने-अनजाने भाभी के खयाल में देवर अब उभर-उभर आता। उसकी सैकड़ों बातों की यादें ऐसा-ऐसा रूप लेकर आतीं कि भाभी को शंका होने लगती कि देवर कहीं सचमुच तो उसे न चाहता था। मासूम, निष्कलंक, निश्छल, पवित्र स्नेह पर वासना की झीनी चादर ओढ़ाते किसको कितनी देर लगती है? फिर भाभी का भूखा मन तो आजकल ऐसी ही कल्पनाओं में मँडराया करता। कभी-कभी तो उसे उस कमीने की बिरादरी से भी ईर्ष्या हो जाती कि काश···तभी फिर

जाने कहाँ से कौन कठोर पुरुष आ, भाभी पर इतने कोड़े लगा देता कि भाभी खून-खून हो छटपटा उठती।

भाभी की कल्पनाओं की भी सेज काँटों की थी, जिस पर उसकी देह पल-पल छिदती रहती।

सात



बनारस जिला-जेल पहुँचते ही मटरू की साँस की बीमारी उखड़ गई। तीन-चार दिन तक तो किसी ने उसकी परवाह न की, पर जब वह बिलकुल लस्त पड़ गया, कोई काम करने काबिल न रहा, तो उसे अस्पताल में पहुँचा दिया गया। उसका बिस्तर ठीक गोपी की बगल में था।

डाक्टर किसी दिन आता, किसी दिन नहीं आता। विशेषकर कम्पाउंडर ही सब-कुछ करता-धरता। वह बड़ा ही नेक आदमी था। उसकी सेवा-शुश्रूषा से ही मरीज आधे अच्छे हो जाते थे। फिर वहाँ खाना भी कुछ अच्छा मिलता था, थोड़ा घी-दूध भी मिल जाता था, मशक्कत से भी छुटकारा मिल जाता था। यही सुविधा प्राप्त करने के लिए बहुत से तन्दुरुस्त रोगी भी अस्पताल में पड़े रहते। इसके लिए डाक्टर की और वार्डर की थोड़ी मुट्ठी गरम कर देना ही काफी था। जाहिर है कि वैसा खुशहाल कैदी ही कर सकते थे।

एक हफ्ते तक मटरू बेहाल पड़ा रहा। वह सूखी खाँसी खाँसता और पीड़ा के मारे 'आह-आह' किया करता। बलगम सूख गया था।

"एक साला है तो। मगर उसमें वह हिम्मत नहीं। फिर भी चुप-चाप न बैठेगा। थोड़े दिन की मेरी शागिर्दी का असर उस पर कुछ-न-कुछ तो पड़ा ही होगा; देखना है।"

"वह तुमसे मिलने आएगा न; पूछना।"

धीरे-धीरे मटरू और गोपी का सम्बन्ध गहरा हो गया। दोनों के समान स्वभाव, समान दुख, समान जीवन ने उन्हें अन्तरंग बना दिया। उनका जीवन अब एक-दूसरे के साथ-सहारे से कुछ मजे में कटने लगा। एक ही बैरक में वे रहते थे। जहाँ तक काम का सम्बन्ध था, उनसे किसी को कोई शिकायत न थी, इसीलिए किसी अधिकारी को उन्हें छेड़ने की जरूरत न थी। मटरू की 'गंगा मैया' जेल भर में मशहूर हो गई। उसे छोटे-बड़े सब बहुत ही धार्मिक आदमी समझते और जब मिलते, 'जय गंगा मैया' कहकर जुहार करते। एक तरह की जिन्दगी उन दीवारों के अन्दर भी पैदा हो गई। हँसी-दिल्लगी, लड़ना-झगड़ना, ईर्ष्या-द्वेष, रोना-गाना वहाँ भी तो वैसे ही चलता है, जैसे बाहर। कब तक कोई वहाँ के समाजी जीवन से कटा-हटा, अलग, अकेले पड़ा रहे? सैकड़ों के साथ सुख-दुख में घुल-मिलकर रहने में भी तो आदमी को एक सन्तोष मिल जाता है।

अब मटरू और गोपी के बीच कभी-कभी जेल के बाहर भी साथ ही रहने-सहने की बात उठ पड़ती। दोनों में इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि जुदाई का खयाल करके भी वे बेचैन हो उठते। मटरू कहता, "जेल से छूटकर तुम भी मेरे साथ रहो, तो कैसा? गंगा मैया के पानी, हवा और मिट्टी का चस्का तुम्हें एक बार लग भर जाए, फिर तो मेरे भगाने पर भी तुम न जाओगे। फिर मुझे तुम्हारे-जैसे एक साथी की भी जरूरत है। जमींदार अब जोर-जबरदस्ती पर उतर आए हैं। न जाने मुझे वहाँ से हटाने के बाद उन्होंने क्या-क्या किया है?

लौटने पर फिर वे मुझसे भिड़ेंगे। अब की उनका मुकाबला करना है। अवार के किसान इस बीच फूट न गए तो मेरा साथ देंगे। मैं चाहता हूँ कि गंगा मैया की छाती पर मेड़ें न खिंचें। मेड़ें खिंचना असम्भव भी है, क्योंकि 'गंगा मैया' की धारा हर साल सब-कुछ बराबर कर देती है। कोई निशान वहाँ कायम नहीं रह सकता। ज़मीन छोड़ने पर जो जितना चाहे, जोते-बोये। ज़मीन की वहाँ कभी कोई कमी न होगी; जोतने वालों की कमी भले ही हो जाए। वहाँ सबका बराबर अधिकार रहे। ज़मींदार उसे हड़पकर, वहाँ अपनी ज़मींदारी कायम करके लगान वसूल करना चाहते हैं, यही मुझे पसन्द नहीं। गंगा मैया भी क्या किसी की ज़मींदारी में है गोपी?"

"नहीं भैया, यह तो सरासर उनका अन्याय है। ऐसा करके तो एक दिन यह भी कह सकते हैं कि गंगा मैया का पानी भी उनका है, जो पीना, नहाना चाहे, कर चुकाये।"

"हाँ, सुनने में तो यह भी आया था कि घाट को वह ठेके पर उठाना चाहते हैं। कहते हैं, घाट उनकी ज़मीन पर है। वहाँ से जो पार-उतराई खेवा मिलता है, उसमें भी उनका हक है। मेरे रहते तो वहाँ किसी की हिम्मत ऐसा करने की नहीं हुई। अब मेरे पीछे जाने क्या-क्या उन्होंने किया हो। सो भैया, वहाँ अपना एक मोर्चा बनाकर इस अन्याय का मुकाबला करना ही पड़ेगा। अगर तुम मेरे साथ रहो तो मेरा बल दूना हो जाएगा।"

"सो तो मैं भी चाहता हूँ। लेकिन तुम्हें तो मालूम है कि घर में मैं ही अकेला बच गया हूँ। बाबू को गठिया ने अपाहिज बना दिया। बूढ़ी माँ और विधवा भाभी का भार मेरे ही सिर है। ऐसे में घर कैसे छोड़ा जा सकता है? हाँ, कभी-कभार तुम्हें सौ-पचास लाठी की ज़रूरत हुई तो ज़रूर मदद करूँगा। तुम्हारे इत्तिला-भर की देर रहेगी। यों दो-चार दिन आ-ठहरकर गंगा मैया का जल सेवन ज़रूर साल में दो-चार बार करूँगा। तुम भी आते-जाते रहना। माँ सर-समाचार तो बराबर

ता ही रहेगा।"

मटरू उदास हो जाता। वह सचमुच गोपी पर जान देने लगा था। किन उसके घर की ऐसी परिस्थिति जानकर भी वह कैसे अपनी बात ज़ोर देता ? वह कहता, "अच्छा, भाई, जैसे भी हो हमारी दोस्ती ायम रहे, इसकी हमें बराबर कोशिश करनी चाहिए।"

इधर बहुत दिनों से मटरू या गोपी की मिलाई पर कोई नहीं आया था। दोनों चिन्तित थे। दूर देहात से कामकाजी किसानों का बनारस आना-जाना कोई मामूली बात न थी। जिन्दगी में बहुत हुआ तो सालों से इन्तजाम करने के बाद वह एक बार काशी, प्रयाग का तीरथ करने निकल पाते हैं। उनके पास कोई चहबच्चा तो होता नहीं कि जब हुआ निकल पड़ें, घूम आएँ। फिर उन्हें फुरसत भी कब मिलती है ? एक दिन भी काम करना छोड़ दें, तो खाएँ क्या ? और खाने को हो भी तो बिटोरने और खेत खरीदने की लालसा से उन्हें छुटकारा कैसे मिले ?

गोपी के ससुर पहले दो-दो, तीन-तीन महीने पर एक बार आ जाते थे। लेकिन जब से उनकी एक बेटी विधवा हो गई थी और दूसरी चल बसी थी, उनकी दिलचस्पी बिलकुल खतम हो गई थी। खामखाह की दिलचस्पी के न वह कायल थे, न उसे पालने की उनकी हैसियत ही थी। दूसरा कौन आता ?

मटरू के ससुर बिलकुल मामूली आदमी थे। जिन्दगी में कभी बाहर जाने का उन्हें अवसर ही न मिला। हाँ, साले से कुछ उम्मीद जरूर थी। लेकिन वह भी जाने किस उलझन में फँसा है, जो एक बार भी खबर लेने न आया।

अगले महीने में चन्द्रग्रहण पड़ रहा था। मटरू और गोपी को पूरा विश्वास था कि इस अवसर पर ज़रूर कोई-न-कोई मिलने आएग

ग्रहण में काशी-नहान का बड़ा महत्त्व है। एक पंथ, दो काज।

ग्रहण के एक दिन पहले इतवार था। सुबह से ही मिलाई की धूम मची थी। जिन कैदियों की मिलाई होने वाली थी, उनके नाम वार्डर पुकार रहे थे और उन्हें फाटक के पास सहन में बैठा रहे थे। जिसका नाम पुकारा जाता, उसका चेहरा खिल जाता; जिसका न पुकारा जाता, उदास हो जाता। सहन से एक खुशी का शोर-सा उठ रहा था।

मटरू और गोपी आँखों में उदास हसरत लिये बैरक के बाहर खड़े थे। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि आज कोई-न-कोई उनसे भी मिलने जरूर आएगा। लेकिन जब सब पुकारें खतम हो गईं और उनका नाम न आया, तो उनकी आँखों की हसरत मूक रुदन करके मिट गई।

"देखो न," थोड़ी देर बाद गोपी जैसे रोकर बोला, "आज भी कोई नहीं आया।"

"हाँ," उसाँस लेता मटरू बोला, "गंगा मैया की मरजी..."

तभी उनके वार्डर ने भागते आकर कहा, "चलो, चलो, मटरू पहलवान, तुम्हारी मिलाई आयी है। जल्दी करो, पन्द्रह मिनट तो ऐसे ही बीत गया।"

मटरू ने सुना, तो उसका चेहरा खिल उठा। तभी गोपी ने वार्डर से पूछा, "मेरी मिलाई नहीं आयी वार्डर साहब?"

"नहीं, भाई नहीं, आती तो बताता नहीं?" वार्डर ने कहा, "बस पहलवान की आयी है। हम तो समझते थे कि इनके 'गंगा मैया' के सिवा कोई है ही नहीं, मगर आज मालूम हुआ कि..."

"मेरे साथ गोपी भी चलेगा," मटरू ने उदास होकर कहा, "यह भी तो मेरा रिश्तेदार है।"

"जेलर साहब के हुकुम बिना यह कैसे हो सकता है? चलो, देर करके वक्त खराब न करो," वार्डर ने मजबूरी जाहिर की।

"अरे जमादार साहब, इतने दिनों बाद तो कोई मिलने आया है। कौन महीने-महीने आने वाला है हमारा? मेहरबानी कर दो। हमारे

लिए तो तुम्हीं जेलर हो," मटरू ने विनती की।

"मुश्किल है, पहलवान, वरना तुम्हारी बात खाली न जाने देता। चलो, जल्दी करो। मिलने वाले इन्तज़ार कर रहे हैं," वार्डर ने जल्दी मचायी।

"जाओ भैया, मिल आओ। हमारी ओर का भी कोई सर-समाचार हो तो पूछ लेना। क्यों मेरी खातिर···"

"तुम चुप रहो," मटरू ने झिड़ककर कहा, "जमादार साहब चाहें तो कर सकते हैं, मैं तो यही जानूँ।" कहकर मटरू वार्डर की ओर बड़ी ही दयनीय आँखों से देखकर बोला, "जमादार साहब, इतने दिन हो गए यहाँ रहते, कभी आप से कुछ न कहा। आज मेरी विनती सुन लो। गंगा मैया तुम्हें बेटा देंगी।"

वार्डर निपूता था। कैदी उसके बेटा होने की दुआ करके उससे बहुत-कुछ करा लेते थे। यह उसकी बहुत बड़ी कमज़ोरी थी। वह हमेशा यही सोचता, जाने किसकी जीभ से भगवान् बोल पड़ें। वह धर्म-संकट में पड़कर बोल पड़ा, "अच्छा, देखता हूँ। तुम तो चलो ; या मेरी शामत बुलाओगे ?"

"नहीं जमादार साहब, बात पक्की कहिए। वरना मैं भी न जाऊँगा। अब तक कोई मिलने न आया, तो क्या मर गया ? गंगा मैया···"

"अच्छा भाई अच्छा; तुम चलो। मैं अभी मौका देखकर इसे भी पहुँचा देता हूँ। तुम लोग तो एक दिन मेरी नौकरी लेकर ही दम लोगे।" कहकर वह आगे बढ़ा।

मटरू ससुर का पैर छू चुका, तो साला उसका पैर छूकर उससे लिपट गया। बैठकर अभी सर-समाचार शुरू ही किया था कि जाने किधर से आकर गोपी भी धीरे से उनके पास बैठ गया। मटरू ने कहा, "यह हरदिया का गोपी है। वही गोपी-मानिक। सुना है नाम ?"

"हाँ, हाँ," दोनों बोल पड़े।

"यह भी यहीं मेरे ही साथ है। इसके घर का कोई सर-समाचार?" मटरू ने पहले दोस्त की ही बात पूछी।

"सब ठीक ही होगा। कोई खास बात होती तो सुनने में आती न?' बूढ़े ने कहा, "अच्छा है अपने जवार के तुम दो आदमी साथ-साथ हो। परदेस में अपने जर-जवार के एक आदमी से बढ़कर कुछ नहीं होता।"

"अच्छा पूजन," मटरू ने साले की ओर मुखातिब होकर कहा, "तू दीयर का हाल-चाल बता। गंगा मैया की धारा वहीं बह रही है, या कुछ इधर-उधर हटी है?"

"इस साल तो पाहुन, धारा बहुत दूर हटकर बह रही है; जहाँ हमारी झोपड़ी थी न, उससे आध कोस और आगे। इतनी बढ़िया चिकनी मिट्टी अब की निकली है पाहुन कि तुम देखते तो निहाल हो जाते। इस साल फसल बोई जाती तो कट्टा पीछे पाँच मन रब्बी होती। मैं तो हाथ मलकर रह गया। जमींदारों ने पच्छिम की ओर कुछ जोता-बोया है। उनकी फसल देखकर छाती पर साँप लोट जाता है।"

"किसानों ने भी···"

"नहीं पाहुन, जमींदारों ने चढ़ाने की तो बहुत कोशिश की, लेकिन तुम्हारे डर से कोई तैयार न हुआ। जमींदारों की भी फसल को भला मैं बचने दूँगा! देखो तो क्या होता है। सब तीरवाही के किसान खार खाये हुए हैं। तुम्हारे जेल होने का सबको सदमा है। पुलिस वालों ने भी मामूली तंग नहीं किया है। जरा तुम छूट तो जाओ फिर देखेंगे कि कैसे किसी जमींदार के बाप की हिम्मत वहाँ पैर रखने की होती है। सब तैयारी हो रही है पाहुन!"

"शाबाश!" मटरू ने पूजन की पीठ ठोककर कहा, "तू तो बड़ा शातिर निकला रे। मैं तो समझता था कि तू बड़ा डरपोक है।"

"गंगा मैया का पानी पीकर और मिट्टी देह में लगाकर भी क्या

था, कोई आँखें साफ कर रहा था, कोई नाक छिनक रहा था, किसी मुँह से कोई बोल न फूट रहा था। पलट-पलटकर वे फाटक की ओर नी ही ओर मुड़कर देखते हुए जाते अपने सम्बन्धियों को हसरत-भरी ज़रों से देख रहे थे।

आठ

•

दो बरस बीतते-बीतते गोपी के यहाँ मेहमानों का आना-जाना शुरू हो गया। गोपी अभी जेल में है, उसके छूटने में करीब दो साल की देर है, यह जानकर भी वे मेहमान न मानते। वे सत्याग्रहियों की तरह धरना डाल लेते। अपाहिज बाप से वे विनती करते कि वे तिलक ले लें। गोपी के छूटकर आने पर शादी हो जाएगी।

ये दिन माँ की खुशी के होते। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर खुशी की आभा छा जाती। वह दौड़-धूपकर मेहमानों के खातिर-तवाज़े का इन्तजाम करती। बहू को आदेश देती, यह कर, वह कर,। लेकिन भाभी के ये दिन बड़ी अन्यमनस्कता के होते। एक झुँझलाहट के साथ वह काम करती। चेहरा एक गुस्से से तमतमाया रहता। आँखों से चिनगियाँ छूटा करतीं। सास से सीधे मुँह बात न करती। बरतन-भाँड़े को इधर-उधर पटक देती। कभी-कभी दबी ज़बान से यह भी कहती कि "अभी जल्दी क्या है। उसे छूट तो आने दो।" तब सास फटकार देती, "उसके आने, न आने से क्या होता है? शादी तो करनी ही है ठीक हो जाएगी तो होती रहेगी। बूढ़े की जिन्दगी का क्या ठिकाना

उसके रहते ठीक तो हो जाए।"

भाभी सुनती तो उसके दिल-दिमाग में एक तूफान-सा उठ खड़ा होता। सारा शरीर जैसे एक विवश क्रोध से फुंक उठता। आते-जाते पैर जमीन पर ऐसे पटकती, मानो सारी दुनिया को चूर-चूर कर देगी। होठ बिचक जाते, नथुने फूल उठते और जाने पागलों-सी क्या-क्या भुनभुनाती रहती।

सास यह सब देखती, तो भुन्नाय होकर कहती, "तेरे ये लच्छन अच्छे नहीं हैं। तुझे यह क्या हो जाता है? बेवा को दिमाग ठण्डा रखना चाहिए। काहे पर अब तू मुझे दिमाग दिखाती है? जो भगवान् के घर से लेकर आयी थी, वही तो सामने पड़ा है। चाहे रोकर भोग, चाहे हँसकर। इससे निस्तार नहीं। भले से रहेगी, तो दो रोटी मिलती रहेगी। नहीं तो किसी घाट की न रहेगी। सब तेरे मुंह पर थूकेंगे।"

"थूकेंगे क्या?" भाभी भी जल-भुनकर कह उठतीं। "बाप-भाई मर गए हैं क्या? उनके कहने से न गई, उसीका तो यह नतीजा भुगत रही हूँ। जहाँ जांगर तोड़ूँगी, वही दो रोटी मिलेंगी। रोएँ वह जिनके जांगर टूट गए हों।"

अपने और अपने मर्द पर फब्ती सुनकर सास जल-भुनकर कोयला होकर चीख पड़ती, "अच्छा, तो चार दिन से जो तू कुछ करने-धरने लगी है, उसीसे तेरा दिमाग इतना चढ़ गया है? तू क्या समझती है मुझे? किसी के हाथ का पानी पीने वाले कोई और होंगे। मुझसे तू बढ़-बढ़ के बातें न कर। मेरे हाथ अभी टूट नहीं गए हैं। तू जो भाई-बाप पर इतराई रहती है, तो वहाँ जाकर भी देख ले। करमजलियों को कहीं ठिकाना नहीं मिलता। अभी तुझे क्या मालूम है? आटे-दाल का भाव मालूम होगा, तब समझेगी कि कोई क्या कहती थी। मैं इस बूढ़े के रोग से मजबूर हूँ, नहीं तो देखती कि तू कैसे एक बात जबान से निकाल लेती है।"

इस झगड़े का आखिरी नतीजा यह होता कि या तो भाभी अपने

आँखों में आँसू भर आते, "अब मेरा वह जमाना न रहा। खेती-गृहस्थी सब बिखर गई। अब कौन वैसा मान-प्रतिष्ठा का आदमी मेरे यहाँ रिश्ता लेकर आएगा, कौन उतना तिलक-दहेज देगा ?"

"मन छोटा न करें बाबूजी, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। देवर आया नहीं कि सब सँभाल लेगा। सब-कुछ फिर पहले की ही तरह जम जाएगा। तब तो कितने ही आकर नाक रगड़ेंगे। आप जरा सब्र से तो काम लें बाबूजी, अभी जल्दी भी काहे की है। वह पहले छूटकर तो आएँ।"

"हाँ, बहू यही सब सोचकर तो किसी को जबान नहीं देता। लेकिन तेरी सास है कि जान खाये जाती है। कहती है, लड़का दुहेजू हुआ, ज्यादा मीन-मेख निकालने से काम न चलेगा। उसे जाने काहे की जल्दी पड़ी है, जैसे हम इतने गये-गुजरे हो गए कि कोई रिश्ता जोड़ने ही हमारे यहाँ न आएगा। कुछ नहीं, तो खानदान का मान तो अभी है। नहीं बहू, जल्दी में मैं किसी ऐसी जगह न पड़ूँगा। उसके कहने से क्या होता है ?" ससुर कड़ककर बोलते।

उन्हीं दिनों एक दिन शाम को एक अजनबी आदमी ने आकर गाँव की पच्छिमी सीमा के पोखरे के कच्चे चबूतरे पर बैठे हुए लोगों में से एक से पूछा, "गोपी सिंह का मकान किस ओर पड़ेगा ?"

गरमी की शाम थी। अँधेरा झुक आया था। आस-पास घने बागों के होने के कारण वहाँ कुछ गहरा अन्धकार हो गया था। खलिहान से छूटकर किसान यहाँ सीधे आकर, नहा-धोकर चबूतरे पर बैठ गए थे और दिन-भर का हाल-चाल सुन-सुना रहे थे। कइयों के तन पर भीगे कपड़े थे और कइयों ने अपने भीगे कपड़े पास ही सूखने को पसार दिए थे। कई तो अभी पोखरे में गोता ही लगा रहे थे। उनके खाँसने-खँखारने और 'राम-राम' कहने और सीढ़ियों से पानी के हलकोरों के

टकराने की आवाजें आ रही थीं। वागों से चिड़ियों का कलरव उठ रहा था। हवा बन्द थी। लेकिन पोखरे को दीवों पर फिर भी कुछ ठण्डक थी।

सवाल सुनकर सबकी निगाहें उठ गईं। पोखरे में पड़े हुओं ने भी गरदनें बढ़ा-बढ़ाकर देखने की कोशिश की। एक ने तो पूछा भी कि कौन है, किसका मकान पूछ रहा है।

अजनबी महज एक लुंगी पहने है। शरीर मोटा-तगड़ा है। छाती पर काले घने बालों का साया साफ़ दीख रहा है। गले में काली तिलड़ी है। चेहरा बड़ी-बड़ी घनी, मूँछ-दाढ़ी से ढँका है। आँखों में ज़रूर कुछ रोब और गरूर है। सिर के बाल जटा की तरह गरदन तक लटके हुए हैं।

जिससे सवाल पूछा गया था, उसने गोपी के मकान का पता बता कर पूछा, "कहाँ से आना हुआ है?"

"काशीजी से आ रहा हूँ। वहाँ जेल में था," अजनबी कहकर आगे बढ़ने ही वाला था कि एक आदमी जैसे जल्दी में पूछ बैठा, "अरे भाई सुना था कि गोपी भी काशीजी के ही जेल में है। वहाँ उससे तुम्हारी भेंट हुई थी क्या?"

अजनबी ठिठक गया। बोला, "हाँ, हम साथ-ही-साथ थे। उसीका समाचार बताने आया हूँ।"

सुनकर सभी-के-सभी उठकर उसके चारों ओर खड़े हो गए। पोखरे के अन्दर से भी सभी भीगी देह लिये ही लपक आए। कइयों ने एक-साथ ही उत्सुक होकर पूछा, "कहो भैया उसका समाचार; अच्छी तरह से तो है वह...?"

"हाँ, मज़े में है। किसी बात की चिन्ता नहीं," कहता हुआ अजनबी आगे बढ़ा, तो सभी उसके साथ हो लिए। जिनके कपड़े फैले हुए थे, उन्होंने उठा लिए। एक दौड़कर समाचार देने चला गया।

"उसकी छाती में चोट लगी थी भैया, ठीक हो गई न?"

"हाँ।"

"और भी गाँव के कई आदमी उसके साथ जेल गये थे। कुछ उनका समाचार?"

"वह सब यहाँ नहीं हैं। शायद सेण्ट्रल जेल में होंगे।"

"तो तुम दोनों साथ ही रहते थे?"

"हाँ।"

"तुम्हें क्यों जेल हुई थी भैया? कहाँ के रहने वाले हो तुम?"

"जमींदारों से दोयर की जमीन को लेकर झगड़ा हुआ था। तुम लोगों को मालूम नहीं क्या? ढाई-तीन साल पहले की बात है। मटरू पहलवान को तुम नहीं जानते?"

"अरे मटरू पहलवान?" सभी चकित हो बोल पड़े, "जय गंगाजी!"

"जय गंगाजी!"

"सब मालूम है भैया, सब। उसकी धमक तो कोसों पहुँची थी। तो तुम्हें सजा हो गई थी। कितने साल की?"

"तीन साल की।"

"गोपी की सजा तो पाँच साल की हुई थी न? कब तक छूटेगा? बेचारे की घर-गिरस्ती बरबाद हो गई, जोरू भी मर गई।"

"क्या?" चकित होकर मटरू बोल पड़ा।

"तुम्हें नहीं मालूम? उसकी जोरू तो साल भीतर ही मर गई। गोपी को किसी ने खबर नहीं दी क्या?"

"खबर होती तो क्या मुझसे न कहता? यह तो बड़ी बुरी खबर सुनाई तुमने।"

"कोई अपने अख्तियार की बात है भैया? भाई मरा, जोरू मर गई। बाप को गठिया ने ऐसा पकड़ लिया है कि मालूम होता है कि दम के साथ ही छोड़ेगी। जवान बेवा अलग कलप रही है। क्या बताया जाए भैया? गोटी बिगड़ती है, तो अकल काम नहीं करती। एक

ज़माना इनका वह था, एक आज यह है। याद आता है, तो कलेजा कचोटने लगता है···इधर से आओ।"

दूर से ही रोने-धोने की आवाज आने लगी। माँ-भाभी ग्रन्दर पास ही रोने लगी थीं। पुरानी बातों को बिसूर-बिसूरकर वह रो रहीं थीं। सुनकर मुहल्ले की जो औरतें इकट्ठी हुई थीं, उन्हें समझाकर चुप करा रही थी। बाप किसी तरह उठकर दीवार का सहारा लेकर बैठ गए थे। उनका मन भी चुपके-चुपके रो रहा था।···

किसी ने एक खटोला लाकर बूढ़े की चारपाई के पास डाल दिया, किसी ने दिया लाकर ताक पर रख दिया।

मटरू ने बूढ़े के पैर पकड़कर पा लागों किया। बूढ़े ने गद्गद् होकर आशीष दिये। फिर पूछा, "मेरा गोपी कैसा है ?" और फफक-फफककर रो उठे।

कितने ही लोग अपने प्यारे गोपी का समाचार सुनने के लिए वहाँ आ इकट्ठे हुए। मटरू जैसे गोहत्या करके बैठा हो, ऐसा चुप, भरा-भरा था। लोग भी आपस में कुछ-न-कुछ कहकर ठण्डी साँसें लेने लगे। कुछ बूढ़े को समझाने लगे, "तुम न रोओ काका ! तुम्हारी तबीयत तो ऐसे ही खराब है, और खराब हो जाएगी। इतने दिन बीते, थोड़े बाकी हैं, कट ही जाएँगे। जिस भगवान् ने बुरे दिन दिखाये, वही अच्छे भी दिखाएगा।"

"पानी-वानी तो पियोगे, न भैया ?" एक ने पूछा।

"अरे, पूछता क्या है रे ? जल्दी गगरा-लोटा ला। थका-माँदा है," एक बूढ़े ने कहा, "हाथ-मुँह धोकर ठण्डा लो, बेटा। आज रात ठहर जाओ। बेचारों को ज़रा तसल्ली हो जाएगी।"

मटरू के मुँह से बोल ही न फूट रहा था। वह तो कुछ और ही सोचकर चला था। उसे क्या मालूम था कि वह कितने ही व्यथा के सोये हुए तारों को छेड़ने जा रहा है।

धीरे-धीरे, काफी देर में, व्यथा का उफनता हुआ दरिया शान्त हुआ।

एक-एक कर लोग हट गए तो बूढ़े ने कहा, "बेटा, अब मुँह-हाथ धो ले। तेरा आदर-सत्कार करने वाला यहाँ कोई है नहीं···कुछ खयाल न करना। तेरी बड़ाई हम सुन चुके हैं। तू समाचार देने आ गया, तो हम दुखियों को कुछ सब्र हो गया। भगवान् तुझे सुखी रखें!"

हाथ-मुंह धोकर मटरू बैठा तो अन्दर से माँ ने लाकर गुड़ और दही का शरबत-भरा ग़िलास उसके सामने रख दिया। मटरू ने उसके भी पैर छुए। बूढ़ी आँचल से बहते आँसुओं को पोंछती वहीं खड़ी हो गई।

शरबत पीकर मटरू जैसे अपने ही से बोलने लगा, "कोई चिन्ता की बात नहीं है माई, गोपी बहुत अच्छी तरह है। हम तो एक ही साथ खाते-पीते, सोते-जागते थे। एक ही बात का उसे दुख रहता है, कि घर का कोई समाचार नहीं मिलता।"

"क्या करें बेटा? जो आने-जाने वाला था, उसे तो तुम देख ही रहे हो। पहले उसके सास-ससुर चले जाते थे। इधर वे भी मोटा गए हैं। क्या मतलब है उन्हें अब हमसे?" सिसकती हुई ही बूढ़ी बोली।

"अरे, तो चिट्ठी-पतरी तो भेजनी थी!"

"हमें क्या मालूम बेटा!···तो चिट्ठी-पतरी वहाँ जाती है?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं, महीने में एक चिट्ठी तो मिलती ही है।"

"तो कल ही लिखकर पठवाऊँगी।"

"अब रहने दो। मैं भेजवा दूंगा। तुम लोगों को कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं। हाँ, सुना कि उसकी जोरू भी नहीं रही। उसे तो कोई खबर भी नहीं।"

"मैंने ही मना करा दिया था बेटा, दुख की खबर कैसे कहलवाती? वहाँ तो कोई समझाने-बुझाने वाला भी उसे न मिलता।"

"अरे, जोरू का क्या?" बूढ़ा बोला, "वह छूटकर तो आये। यहाँ तो कितने ही रोज़ नाक रगड़ने आते हैं। फिर ऐसी बहू ला दूंगा कि···"

"नहीं काका, अब की तो उसकी शादी मैं करवाऊँगा। तुम बीमार आदमी आराम करो। मैं सब-कुछ कर लूँगा। उसे आने तो दो। तुम्हें क्या मालूम कि उसे मैं अपने छोटे भाई से भी ज्यादा मानता हूँ। भो काका, वह भी मुझे कम नहीं मानता। हाँ, उसकी भाभी तो अच्छी है। उसे वह बहुत याद करता है।"

दरवाजे की आड में खड़ी भाभी सब सुन रही है, यह किसी को मालूम न था।

बूढ़ी बोली, "उसका अब क्या अच्छा और क्या बुरा बेटा? करम ही जब दगा दे गया तो क्या रह गया उसकी जिन्दगी में? जब तक जिएगी, पड़ी रहेगी। उसके भाई-बाप ने भी इधर कोई खबर न ली।"

"गोपी को उसकी बहुत चिन्ता रहती है। बेचारा रात-दिन 'भाभी, भाभी' की रट लगाये रहता है। इन दोनों में बहुत मुहब्बत थी क्या?" मटरू ने पूछा।

"अरे बेटा, बहू ऐसी प्राणी है ही। बिलकुल गऊ है, गऊ," बूढ़ा बोल पड़ा, "उसीकी सेवा पर ही तो मेरा दम अड़ा है। उसकी सूनी माँग देखकर मेरा कलेजा फटता है। इसी उम्र में ऐसी विपत्ति आ पड़ी बेचारी पर। फिर भी बेटा, मेरे रहते उसे कोई दुख न होने पाएगा। वह मेरी बड़ी बहू है; एक दिन घर की मालकिन बनेगी। वह देवी है, देवी।"

बूढ़ी मन-ही-मन यह सब सुनकर कुढ़ती रही। जब सहा न गया तो बोली, "खयका तैयार है। अभी खायोगे या…"

नौ

•

तिरवाही के किसानों में प्राकृतिक रूप से स्वच्छन्दता और साह-सिकता होती है। खुले हुए कोसों फैले मैदान, झाऊ और सरकण्डे के जंगल और नदी से उनका लड़कपन में ही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। निडर होकर जंगलों में गाय-भैंस चराने, घास-लकड़ी काटने, नदी में नहाने, नाव चलाने, अखाड़े में लड़ने, भैंस का दूध पीने से ही उनकी ज़िन्दगी शुरू होती है और इन्हींके बीच बीत भी जाती है। प्रकृति की गोद में खेलने, साफ़ हवा, निर्मल जल पीने, दूध-दही की इफ़रात और कसरत के शौक के कारण सभी हट्टे-कट्टे, मज़बूत और स्वभाव से अक्खड़ होते हैं। असीम जंगलों और मैदानों का फैलाव इनके दिल-दिमाग में भी जैसे स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता का अबाध भाव बचपन में ही भर देता है। फिर ज़मींदारों की बस्ती वहां से कहीं दूर होती है। वहां से वे इन पर वह ज़ोर-ज़बरदस्ती, ज़ुल्म-ज़्यादती की चांड़ नहीं चढ़ा पाते, जो आस-पास के किसानों को उनका ग़ुलाम बना देती है। बल्कि इसके विरुद्ध ज़मींदार वहां के आसामियों से मन-ही-मन डरते हैं। उनकी ताक़त, उनके वातावरण, उनके अक्खड़पन और मर-मिटने की साहसिकता के आगे, ज़मींदार जानते हैं कि उनका कोई वश नहीं चल सकता। इसीसे वे उनके साथ भरसक समझौते से रहते हैं, कहीं कोई ज़्यादती भी कर जाते हैं, लगान नहीं देते, या आधा-पौना देते हैं, तो भी नज़रन्दाज़ कर जाते हैं, उनसे भिड़ने की हिम्मत नहीं करते। पुलिस भी सीधे उनके मुक़ाबले में खड़े होने से कतराती है। बहुत हुआ, वह भी जब किसी ज़मींदार ने ज़रूरत से ज़्यादा उनकी मुट्ठी गरम कर दी, तो पुलिस ने लुक-छिपकर, धोखे-धड़ी से एकाध को पकड़कर अपने अस्तित्व का बोध करा दिया। इससे अधिक नहीं।

ये जितने स्वच्छन्द, स्वतन्त्र और ताक्तवर होते हैं, उतने ही वज्र-मूर्ख भी। बात-बात में लाठी उठा लेना, खून-खच्चर कर देना, एक-दूसरे से लड़ जाना, फसल काट लेना, खलिहान में आग लगा देना या किसी को लूट लेना आये दिन की बातें होती हैं। दिमाग लगाकर, सोच-विचार करके वे कोई मामला तय करना जानते ही नहीं। वे समझते हैं कि हर मर्ज की दवा लाठी है, बल है। जिधर आगे-आगे कोई भागा, सब उसके पीछे पड जाते है। जिसके मुंह से पहली बात निकल गई, सब उसीको ले उड़ते हैं। कोई तर्क, कोई बहस, कोई बातचीत, कोई सर-समझौता वे नहीं जानते। बात पर अड़ना और जान देकर उसे निबाहना वे जानते हैं। उनके यहाँ अगर किसी बात की कद्र है तो वह है बल की, साहस की, मर-मिटने के भाव की। उनका नेता वही हो सकता है जो सबसे ज्यादा बली हो, दंगल मारा हो, मोर्चे पर आगे-आगे लाठियाँ चलायी हों, भरी नदी को पार कर गया हो, घड़ियालों को पछाड़ दिया हो, किसी बड़े जमींदार से भिड़ गया हो, उसे थप्पड़ मार दिया हो या सरेआम गाली देकर उसकी इज्जत उतार ली हो।

इनकी सबसे बड़ी कमजोरी खेत और बैल-भैंस है। खेत पर वे जान देते हैं। किसी भी मूल्य पर वे खेत लेने के लिए तैयार रहते हैं। उनकी इस कमजोरी से जमींदार अक्सर फायदा उठाते हैं, उन्हें बेवकूफ बनाते हैं। एक बैल या भैंस खरीदनी हुई तो झुण्ड बनाकर, सतू-पिसान बांधकर निकलेंगे। मोल-भाव होगा उसी अक्खड़पन के साथ। जो दाम वे मुनासिब समझेंगे, उसके अलावा कोई और दाम मुनासिब हो ही कैसे सकता है? वे अड़ जाएँगे; धरना दे देंगे; धमकाएँगे; लाठियाँ चमकाएँगे। बेचने वाला मान गया, तो ठीक। वरना रात-बिरात वे उसे खोलकर तिड़ी कर देंगे और दीयर के जंगल में उसे कहीं छिपाकर अपनी बहादुरी का बखान सुनेंगे और करेंगे। वहाँ यह काम किसी भी दृष्टि से खराब नहीं समझा जाता।

मटरू ने जब उन्हें दीयर के खेतों के बारे समझाया था, तो चूंकि वह

एक पहलवान, वहादुर, निडर और 'गंगा मैया' के भक्त की बात थी, वे मौन हो गए थे। फिर मटरू के जेल चले जाने के बाद जमींदारों की दूसरी बातें उनकी समझ में कैसे आतीं ? यहाँ तक कि जमींदारों ने उन्हें लालच दिया कि वे जहाँ चाहें, खेती करें और कुछ न दें। फिर भी वे ना कर गए। उन सबकी अब एक ही रट थी कि मटरू पहलवान जब लौटकर आएगा और जैसा कहेगा वैसा होगा। उसके आने के पहले कुछ नहीं।

पूजन ने भी चाहा था कि मटरू का काम जारी रखे। लेकिन मटरू की तरह उसमें हिम्मत और ताकत न थी कि वह अकेले झोंपड़ी बनाकर नदी के तीर पर जंगलों के वीच, जमींदारों से दुश्मनी वेसहकर रहे और खेती करे। इसलिए उसने कोशिश की थी कि दस-वीस किसान और उसके साथ तीर पर रहने, खेती करने के लिए तैयार हो जाएँ। लेकिन वे मटरू के नाम पर ही तैयार हुए थे। जैसे एक सियार वोलता है, तो सब उसी सियार की धुन में वोलने लगते हैं। उसी तरह मटरू के आने के पहले इस दिशा में कोई कदम उठाने के लिए तैयार न थे।

मजबूर होकर, अपना दवदवा कायम रखने के लिए तव जमींदारों ने खुद वहाँ अपनी खेती का सिलसिला कायम किया था। यह काम कुछ-कुछ वाघ के मुँह में हाथ लगाने के ही वरावर था। साधारणतः वे वैसा कभी न करते। लेकिन अब परिस्थिति ही ऐसी आ पड़ी थी। वे कुछ न करते तो यह अन्देशा था कि दीयर में उनके दव जाने की बात उठ जाती और किरकिरी हो जाती। फिर सारा खेल चौपट हो जाता। सब किये-धरे पर पानी फिर जाता। सो उन्होंने वहाँ अपनी झोंपड़ी खड़ी करवाई। अपने आदमी और हल भिजवाकर जोतवाया-वोवाया और तनख्वाह पर कुछ मजबूत आदमियों को रखवाली के लिए वहाँ रखा। फिर भी वह जानते थे कि जब तक तीरवाही के किसानों से उनका व्यवहार ठीक न रहेगा, तब तक कुछ वचना मुश्किल है। उन्होंने

पहले यह भी कोशिश की थी कि कम-से-कम रखवाली का जिम्मा यहीं क
ही कोई आदमी ले ले, लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ था। इस तरह जमींदारों
को काफी खर्च करना पड़ा। यहाँ तक कि अगर फसल कटकर सही-
सलामत घर आ जाए, तो भी उसका दाम खर्च से कम ही हो। फिर
भी उन्होंने वैसा किया। दबदबा कायम रखना जरूरी था। दबदबा न
रहा, तो जमींदारी कैसे रह सकती है।

फसल उगी, बढ़ी और देखते-देखते छाती-छाती-भर खड़ी हो लहरा उठी। तीरवाही के किसानों ने देखा तो उनकी छातियों पर साँप लोट गए। उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने उनके अपने खेत पर ही कब्जा करके यह फसल बोयी हो, जैसे उनके घर से ही कोई अनाज की बोरियाँ उठाये ले जा रहा हो, और वे विवश होकर बस देखते जा रहे हों।

ऐसे ही मौके का फायदा पूजन ने उठाया। मटरू के साथ सम्बन्ध के कारण उनका मान आखिर कुछ तो किसानों में हो ही गया था। उसने चुपके-चुपके किसानों से बात छेड़ दी, "बाहर का आदमी हमारी आँखों के ही सामने हमारी 'गंगा मैया' की धरती से फसल काट ले जाए! डूब मरने की जगह है! और याद रखो, अगर एक बार भी फसल कटकर जमींदारों के घर पहुँच गई, तो उनका दिमाग बढ़ जाएगा। मटरू पाहुन के आने में अभी सालों की देर है। तब तक यह सारी धरती उनके कब्जे में चली जाएगी। आदमी के खून का चस्का लग जाने पर घड़ियाल की जो हालत होती है, वही जमींदारों की होगी। तुम लोग तब 'मटरू, मटरू' की रट लगाते रहोगे और कुछ न होगा। वैसे मौके पर मटरू आकर ही क्या कर लेगा? जरा तुम भी तो सोचो। तुम इतना तो कर ही सकते हो कि फसल जमींदारों के घर न जाने पाए।"

यह किसानों के मन की बात थी। पूजन की बात उनके मन में उतर गई। कई जवानों ने पूजन का साथ देने का वादा किया। पर

एक पहलवान, बहादुर, निडर और 'गंगा मैया' के भक्त की बात थी, वे मौन हो गए थे। फिर मटरू के जेल चले जाने के बाद ज़मींदारों की दूसरी बातें उनकी समझ में कैसे आतीं? यहाँ तक कि ज़मींदारों ने उन्हें लालच दिया कि वे जहाँ चाहें, खेती करें और कुछ न दें। फिर भी वे ना कर गए। उन सबकी अब एक ही रट थी कि मटरू पहलवान जब लौटकर आएगा और जैसा कहेगा वैसा होगा। उसके आने के पहले कुछ नहीं।

पूजन ने भी चाहा था कि मटरू का काम जारी रखे। लेकिन मटरू की तरह उसमें हिम्मत और ताकत न थी कि वह अकेले झोंपड़ी बनाकर नदी के तीर पर जंगलों के बीच, ज़मींदारों से दुश्मनी बेसहकर रहे और खेती करे। इसलिए उसने कोशिश की थी कि दस-बीस किसान और उसके साथ तीर पर रहने, खेती करने के लिए तैयार हो जाएँ। लेकिन वे मटरू के नाम पर ही तैयार हुए थे। जैसे एक सियार बोलता है, तो सब उसी सियार की धुन में बोलने लगते हैं। उसी तरह मटरू के आने के पहले इस दिशा में कोई कदम उठाने के लिए तैयार न थे।

मजबूर होकर, अपना दबदबा कायम रखने के लिए तब ज़मींदारों ने खुद वहाँ अपनी खेती का सिलसिला कायम किया था। यह काम कुछ-कुछ बाघ के मुँह में हाथ लगाने के ही बराबर था। साधारणतः वे वैसा कभी न करते। लेकिन अब परिस्थिति ही ऐसी आ पड़ी थी। वे कुछ न करते तो यह अन्देशा था कि दीयर में उनके दब जाने की बात उठ जाती और किरकिरी हो जाती। फिर सारा खेल चौपट हो जाता। सब किये-धरे पर पानी फिर जाता। सो उन्होंने वहाँ अपनी झोंपड़ी खड़ी करवाई। अपने आदमी और हल भिजवाकर जोतवाया-बोवाया और तनख्वाह पर कुछ मज़बूत आदमियों को रखवाली के लिए वहाँ रखा। फिर भी वह जानते थे कि जब तक तीरवाही के किसानों से उनका व्यवहार ठीक न रहेगा, तब तक कुछ बचना मुश्किल है। उन्होंने

पहले यह भी कोशिश की थी कि कम-से-कम रखवाली का जिम्मा वहाँ का ही कोई आदमी ले ले, लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ था। इस तरह जमींदारों को काफी खर्च करना पड़ा। यहाँ तक कि अगर फसल कटकर सही-सलामत घर आ जाए, तो भी उसका दाम खर्च से कम ही हो। फिर भी उन्होंने वैसा किया। दबदबा कायम रखना जरूरी था। दबदबा न रहा, तो जमींदारी कैसे रह सकती है।

फसल उगी, बढ़ी और देखते-देखते छाती-छाती-भर खड़ी हो लहरा उठी। तीरवाहों के किसानों ने देखा तो उनकी छातियों पर साँप लोट गए। उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने उनके अपने खेत पर ही कब्जा करके यह फसल बोयी हो, जैसे उनके घर से ही कोई अनाज की बोरियाँ उठाये ले जा रहा हो, और वे विवश होकर बस देखते जा रहे हों।

ऐसे ही मौके का फायदा पूजन ने उठाया। मटरू के साथ सम्बन्ध के कारण उसका मान आखिर कुछ तो किसानों में हो ही गया था। उसने चुपके-चुपके किसानों से बात छेड़ दी, "बाहर का आदमी हमारी आँखों के ही सामने हमारी 'गंगा मैया' की धरती से फसल काट ले जाए! डूब मरने की जगह है! और याद रखो, अगर एक बार भी फसल कटकर जमींदारों के घर पहुँच गई, तो उनका दिमाग बढ़ जाएगा। मटरू पाहुन के आने में अभी सालों की देर है। तब तक यह सारी धरती उनके कब्जे में चली जाएगी। आदमी के खून का चस्का लग जाने पर घड़ियाल की जो हालात होती है, वही जमींदारों की होगी। तुम लोग तब 'मटरू, मटरू' की रट लगाते रहोगे और कुछ न होगा। वैसे मौके पर मटरू आकर ही क्या कर लेगा? जरा तुम भी तो सोचो। तुम इतना तो कर ही सकते हो कि फसल जमींदारों के घर न जाने पाए।"

यह किसानों के मन की बात थी। पूजन की बात उनके मन में उतर गई। कई जवानों ने पूजन का साथ देने का वादा किया। सब

तैयारियाँ हो गईं। और जब फसल तैयार हुई तो एक रात कटकर, नावों पर लदकर पार पहुँच गई। रखवाले दुम दबाकर भाग खड़े हुए। जान देने की बेवकूफी वे जमींदारों के लिए क्यों करते ?

दूसरे दिन एक शोर उठा। एकाध लाल पगड़ी भी मुखिया के यहाँ दिखाई दी और फिर सब-कुछ शान्त हो गया। कहीं से कोई सुराग कैसे मिलता ? सब किसानों की छाती ठण्डी हुई थी। कह दिया गया कि काटने वाले, हो-न-हो, पार से आये होंगे। नदी किनारे कई जगह डांठ पड़े मिले हैं। रात-ही-रात नावों पर लाद-लूदकर चम्पत हो गए। उनको तो खबर तक न लगी। लगी होती तो एकाध लाठी तो बज ही जाती।

जवानों का मन बढ़ गया। भाऊ और सरकण्डों के जंगलों पर भी उन्होंने रात-बिरात हाथ साफ करना शुरू कर दिया और कहीं-कहीं तो महज़ दिल की जलन शान्त करने के लिए आग भी लगा दी।

जमींदार सुनते और ऐंठकर रह जाते। ऐसी बेबसी से तो उनका कभी पाला ही न पड़ा था। एक बार पुलिस की मुट्ठी गरम करने से जो आखिरी नतीजा हुआ था, उन्होंने देख लिया था। अब फिर उसे दुहराकर कोई फायदा कैसे देखते ?

अब पूजन का मान वहाँ बढ़ गया। लेकिन पूजन भी इससे ज्यादा कुछ न कर सका। जमींदार भी चुप्पी साध गए। उन्होंने सोचा कि छेड़ने से कोई फायदा नहीं होने का। अगर वे शान्त रहें, तो मुमकिन है कि किसान भी शान्त हो जाएँ और फिर पहले ही जैसी हालत गुज़र जाए। उनकी ओर से कोई पहल-कदमी न देखकर किसान भी कुछ उदासीन हो मटक का इन्तजार करने लगे। वही आये तो आगे कुछ किया जाए। यों उस साल के बाद वहाँ कोई उल्लेखनीय घटना न घटी।

गोपी के घर मटरू का वह समय बड़ी बेकली से कटा। स्टेशन पर मटरू की गाड़ी तीसरे पहर पहुँची थी। वहाँ से उसका दीयर दस कोस पर था। एक छन भी रास्ते में कहीं वह रुका, सुस्ताया नहीं। भूत की तरह चलता रहा। गंगा मैया की लहरें उसे उसी तरह अपनी ओर खींच रही थीं, जैसे किसी सालों बिछुड़े परदेसी को उसकी प्रियतमा। वह भागमभाग जल्द-से-जल्द गंगा मैया की गोद में पहुँच जाना चाहता था। ओह, कितने दिन हो गए! वह हवा, वह पानी, वह मिट्टी, वह गंगा मैया! आज कहीं उसके पंख होते!

रास्ते में ही गोपी का घर पड़ता था। सोचा था कि पाँच छन में सर-समाचार ले-देकर, वह फिर भाग खड़ा होगा और घड़ी-दो-घड़ी रात बीतते-बीतते गंगा मैया का कछार पकड़ लेगा। लेकिन गोपी के घर ऐसी स्थिति से उसका पाला पड़ गया कि उसे रुक जाना पड़ा। उन दुखी प्राणियों को छोड़कर भाग खड़ा होना कोई आसान काम न था। मन छन-छन कचोट रहा था, लेकिन न रुक सकने की बात उसके मुँह से न निकली। उनके आदर-सत्कार को इन्कार कर, उनके दुखी दिलों को चोट पहुँचाये, ऐसा दिल मटरू के पास कहाँ था?

खा-पीकर गोपी की माँ और बाप के साथ बड़ी रात गये तक बातचीत चलती रही। आखिर जब वे थक गए, माँ सोने चली गई और बूढ़ा खर्राटे लेने लगा, तो मटरू ने भी सोने की कोशिश की। मगर नींद कहाँ? फिर दिल-दिमाग उसी दीयर में भटकने लगे। वह नदी, वह जंगल, वह हवा, वह मिट्टी, जैसे सब वहाँ बाँह फैलाये खड़े मटरू को गोद में भर लेने को तड़प रहे हैं और मटरू है कि इतना नजदीक आकर भी सबको भुलाकर यहाँ पड़ा हुआ है। 'आओ, आओ! दौड़कर चले आओ, बेटा! कितने दिनों से हम तुमसे बिछुड़कर तड़प रहे हैं! आओ, जल्द आकर हमारे कलेजे से चिपक जाओ! आओ, आओ' और इस 'ओ' की पुकार इतनी ऊँची और लम्बी होकर मटरू के कानों में गूँज उठी कि उसका रोम-रोम तड़प उठा। वह व्याकुल

होकर उठ बैठा। आँखें फाड़कर चारों ओर ऐसे देखा कि कहीं यह पुकार पास ही से तो नहीं आयी है, कहीं यह जानकर कि मटरू पास आकर यों पड़ा हुआ है, 'गंगा मैया' खुद ही तो नहीं चली आईं?

मटरू उठ खड़ा हुआ और ऐसे भाग चला जैसे उसे डर हो कि फिर कहीं कोई उसे पकड़कर न बैठा ले। चारों ओर घना सन्नाटा और अन्धकार छाया था। कहीं कुछ सूझ न रहा था। फिर भी मटरू के पैरों को यह अच्छी तरह मालूम था कि उसकी 'गंगा मैया' तक पहुँचने की दिशा कौनसी है। फिर उन फौलादी पैरों के लिए रास्ता बना लेना क्या मुश्किल बात थी?

कटे हुए खेतों से मटरू बेतहाशा सीधा भागा जा रहा था। एक क्षण की देर भी अब उसे सह्य न थी। पैरों में खुरकुची गड़ रही है। कहीं कुछ दिखाई नहीं देता, होश-हवास ठिकाने नहीं है। फिर भी वह भागा जा रहा है। आँखों के सामने बस 'गंगा मैया' की धार चमक रही है। मन बस एक ही बात की रट लगाये हुए है—'आ गया माँ, आ गया!

नींद से भरी धरती गरम-गरम साँसें ले रही है। अन्धकार की सेज पर हवा सो गई है। गरमी से परेशान रात जैसे रह-रहकर जम्हुआई ले रही है। उमस-भरा सन्नाटा ऊँघ रहा है और आत्मा में मिलन की तड़प लिये मटरू भागा जा रहा है। पसीने की धारें शरीर से बह रही हैं। भीगी आँखों के सामने अन्धकार में 'गंगा मैया' की लहरें बाँहें फैलाये उसे अपनी गोद में समा लेने को बढ़ी आ रही हैं। ऊपर से तारे पलकें झपकाते यह देख रहे हैं। लेकिन मटरू 'गंगा मैया' के सिवा कुछ नहीं देख रहा। उसके कानों में माँ की पुकार गूँज रही है। उसके प्राण जल्द-से-जल्द माँ की गोद तक पहुँच जाने को तड़प रहे हैं। वह भागा जा रहा है, भागा जा रहा है।

यह दीयर की हवा की खुशबू है। यह दीयर की मिट्टी की खुशबू है। यह मैया के आँचल की खुशबू है। मटरू के प्राण उन्मत्त हो उठे।

रोम-रोम उत्फुल्ल हो कण्टकित हो गए। उसके पैरों में बिजली भर गई। वह आँधी की तरह पुकारता दौड़ पड़ा—"माँ ! माँ !"

लहरों की प्रतिध्वनि हुई, "बेटा ! बेटा !"

दिशाओं ने प्रतिध्वनि की, "बेटा ! बेटा !"

धरती पुकार उठी, "बेटा ! बेटा !"

आकाश और धरती जैसे करोड़ों विह्वल माँओं और बेटों की पुकारों से गूँज उठे, जैसे दसों दिशाएँ पुकारती हुई दौड़कर मटरू के गले से लिपट गईं। मटरू एक भूखे बच्चे की तरह छलाँगकर 'गंगा मैया' की गोद में कूद पड़ा। 'गंगा मैया' ने अपने बेटे को अपनी गोद में ऐसे भर लिया, जैसे अपने तन-मन-प्राण में ही उसे [illegible]। यह कल-कल के स्वर नहीं, माँ की पुचकारों और चुम्बनों के शब्द हैं। दिशाएँ झूम रही हैं, हवा गुनगुना रही है। मिट्टी खिलखिला रही है: "आ गया, हमारा बेटा आ गया ! हमारा लाड़ला आ गया !"

दस

•

यह कितनी असम्भव बात थी, भाभी जानती थी। फिर भी इस बात को वह अपने मन में पोसे जा रही थी। आखिर क्यों?

आदमी के जीने के लिए एक सहारा उसी तरह आवश्यक है जैसे हवा और पानी। किसी के पास कोई वास्तविक सहारा नहीं होता तो वह अवास्तविक सहारे ही का सहारा लेता है। वह एक कल्पना, एक स्वप्न का सहारा सामने खड़ा कर लेता है। मनों कल्पनाएँ और स्वप्न

किसी ठोस आधार पर ही अवलम्बित हों, ऐसी बात नहीं। बहुत-सी कल्पनाओं और स्वप्नों के आधार भी काल्पनिक और स्वप्निल होते हैं। लेकिन आदमी उन्हीं से जीवन की यथार्थ शक्ति प्राप्त करके जीता रहता है। कौन जाने इस विचित्र संसार में कहीं निराधार कल्पना और स्वप्न भी एक दिन सही हो जाएँ!

यह सही है कि इस तरह के सहारे का सृजन आदमी उसी स्थिति में करता है जब उसके लिए कोई दूसरा चारा ही नहीं रह जाता। जीने की स्वाभाविक अदम्य चाह आदमी को विवश करती है कि वह ऐसा करे। क्या भाभी की परिस्थिति ऐसी ही नहीं थी? फिर वह ऐसा कर रही थी तो इसमें अस्वाभाविक क्या है?

जिस दिन उसने मटरू के मुँह से गोपी की वह चन्द बातें सुनी थीं, उसी दिन से जैसे बहुत पहले से उसके हृदय में उगे उस अंकुर को उन बातों ने अमृत से सींचना शुरू कर दिया था। वे बातें उसके जीवन के सूने तारों को हर क्षण झंकृत करती रहतीं। उसके होंठ सदा एक मन्त्र की तरह बुदबुदाया करते, "गोपी को उसकी बहुत चिन्ता रहती है। बेचारा रात-दिन 'भाभी-भाभी' की रट लगाये रहता है···इन दोनों में बहुत मोहब्बत थी क्या?" और उसके प्राण जैसे एक मधुरतम संगीत के अमृत में नहा उठते। आत्मा जैसे विह्वल हो बोल उठती, "हाँ, बहुत मोहब्बत थी, बहोत···परदेसी, तू उसे चिट्ठी लिखना, तो मेरी ओर से यह लिख देना कि मुझे भी उसकी चिन्ता लगी रहती है। मेरे प्राण भी रात-दिन उसकी रट लगाये रहते हैं···हाँ परदेसी, हममें बहुत मोहब्बत थी, बहोत!"

भाभी को इस मन्त्र के जाप ने अब बहुत बदल दिया था। वह चिड़-चिड़ापन, वह कड़वापन, वह झुँझलाहट, वह क्षुब्धता, वह बेरुखी अब खतम हो गई थी। अब वह अपने को कुछ उत्साहित अनुभव करती, काम में कुछ रस लेती, पूजा-पाठ का कुछ अर्थ समझती, सास-ससुर की सेवा-शुश्रूषा में उसे कुछ फल दिखाई देता। व्यर्थ जिन्दगी

में एक सार्थकता का आभास होता। कोई है जो उसकी बहुत-बहुत चिन्ता करता है, उसकी रात-दिन रट लगाये रहता है। कोई है, कोई है···

घर की कलह मिट गई। सब-कुछ सुचारु रूप से चलने लगा। सास की कोई शिकायत नहीं रह गई। पका-पकाया दोनों जून, मीठी-मीठी, आदर-मान की बातें, हर बात पर एक पाँव पर खड़ी बहू, कभी हिलने-डुलने का मौका न देने वाली, बड़ी रात गये तक उबटन की मालिश। करम फूटी बहू घर की लक्ष्मी न बन जाए तो क्या बने? ससुर तो पहले ही से उसकी सेवा के गुलाम थे। वे जानते थे कि जिस दिन बहू ने हाथ खींचा, वह कल मरने वाले होंगे तो आज ही मर जाएँगे। औरत के बस की बात यह कहाँ रह गई थी। बल्कि वह तो उनकी लम्बी बीमारी से आजिज आकर कभी-कभी ऐसे मनाने लगती कि जैसे बूढ़ा भार हो गया हो। बहू की बड़ी तीमारदारी ने तो सचमुच उनमें यह उम्मीद पैदा कर दी कि वे बच जाएँगे। उनके मुँह से हर क्षण आशीष के शब्द झड़ा करते।

कभी-कभी उन आशीषों से एक कुलबुलाहट का अनुभव करके भाभी पूछ बैठती, "बाबूजी, मुझ अभागिन को आप ऐसे असीस क्यों देते हैं?"

बूढ़े की आँखों में आँसू भर आते। व्याकुल होकर वे बोलते, "जानता हूँ बहू कि यह ऊपर की सोचना है। लेकिन अपने मन को क्या करूँ? मानता ही नहीं बहू, मैं तो हमेशा यही प्रार्थना करता हूँ कि तू सुखी रहे।"

एक करुण मुस्कान होठों पर लाकर भाभी कहती, "सुख तो उन्हीं-के साथ गया बाबूजी!" और टप-टप आँसू चुआने लगती।

"तू सच कहती है बहू," बूढ़े आर्द्र कण्ठ से कहते, "औरत का लोक-परलोक मरद से ही है।"

उनके ठेहुने पर सिर रखकर बिलखती हुई भाभी कहती, "मेरा तो

लोक-परलोक दोनों नसा गया बाबूजी, आज अब मुझे असीस दीजिए कि जितनी जल्दी हो सके, इस संसार से छुटकारा मिल जाए !"

"नहीं बहू, नहीं, तू भी इस अपाहिज बूढ़े को छोड़कर चली जाना चाहती है ?" बूढ़े काँपते स्वर से कहते।

सिर उठाकर, आँचल से आँसू पोंछ भाभी कहती, "देवर की नयी बहू आएगी। वह क्या आपकी सेवा मुझसे कम करेगी ?"

"कौन जाने, बहू कैसे आएगी ? तू तो पिछले जनम की मेरी बेटी थी। न जाने कितना गंगा नहाकर इस जनम में तुझे बहू के रूप में पाया," बूढ़े गद्‌गद् होकर कहते, "दूसरे की बेटी क्या इस तरह किसी की सेवा कर सकती है ? यह तो मेरा सौभाग्य है बेटी कि तुझ-सी बहू मुझे मिली। नहीं तो कौन जाने अब तक मेरी मिट्टी कहाँ गल-पच गई होती।"

"मेरा दुर्भाग्य भी तो यही है बाबूजी कि सारी उमर बिपदा झेलने के लिए जी रही हूँ। परान नहीं निकलते। मैं तो रोज मनाती हूँ कि कब ये परान निकलें कि साँसत से छुटकारा पाऊँ। आखिर अब मेरी जिन्दगी में क्या बच गया है जिसके लिए परान अटके रहें ?" भाभी निढाल होकर कहती।

"अपने भाग से ही कोई नहीं मरता-जीता रे पगली !" बूढ़े उसे सान्त्वना देते, "जाने किसके भाग से तू जी रही है ? मेरे मन में तो आता है कि मेरे भाग से ही तू जिन्दा है। रामजी ने मुझे ऐसा रोग दिया तो साथ ही तुझ-सी बहू भी दी कि रात-दिन सेवा कर सके। बहू अपने चाहने-न-चाहने से क्या होता है ? जो रामजी चाहते हैं वही होता है। कौन जाने रामजी की इसमें क्या मन्शा हो ! बहू मैं तो सोचूँ कि मेरी ही सेवा के लिए तू पैदा हुई।···हाँ री, ऐसा सोचते वखत तुझे गोपी का मोह नहीं लगता ? तुम दोनों में कितनी मोहब्बत थी ! मटरू उस दिन कहता था न कि गोपी को तेरी बहुत चिन्ता रहती है।

बहू, वह तुझे बहुत मानता है। जब तक वह जिएगा, तुझे कोई तकलीफ न होने देगा। तू निसखातिर रह।"

"कौन जाने बाबूजी, भाग में क्या लिखा है? देवर का मोह मुझे भी कम नहीं लगता। उसे एक बार देख लेती, फिर मर जाती। जाने उसकी नयी बहू कैसी आए, उसका व्यवहार मेरे साथ कैसा हो? मुझसे तो कुछ सहा न जाएगा, बाबूजी। कहीं देवर का मन मैला हुआ, तो मैं तो कहीं की न रहूँगी।" भाभी फिर सिसक उठती।

"यह तू क्या कहती है, बहू?" बूढ़े एक मीठी डाँट के साथ कहते, "तू मेरी बड़ी बहू है। तू घर की मालकिन की तरह रहेगी। मेरे रहते···"

"आपका बस कहाँ चलने का, बाबूजी? आप अच्छे रहते तो मुझे किसी बात की चिन्ता न रहती। उसने आकर कहीं देवर पर जादू फेंका, और वह उसके बस में होकर···नहीं बाबूजी, मेरा तो मर जाना ही अच्छा है। कहीं ताल-पोखर···"

"बहू!" बूढ़े जैसे चौंककर चीख पड़ते, "ताल-पोखर का नाम कभी फिर मुँह पर न लाना। जानती है, तू किस खानदान की बहू है? भले ही घर में सड़-गल जाना, लेकिन बहू, खानदान पर कलंक का टीका न लगाना! किसी को कहने का अगर कभी मौका मिल गया कि फलाँ की बहू ताल-पोखर में डूब मरी तो मैं अपना सिर फोड़ लूँगा। इस बूढ़े के सिर का खयाल रखना बेटी, और चाहे जो करना," आवेश से थक-कर बूढ़े काँपने लगते।

आँचल से आँसू पोंछते भाभी वहाँ से हट जाती। इस बूढ़े से कोई बात करना व्यर्थ है। यह कुछ नहीं समझता—कुछ नहीं। इसे अपनी तीमारदारी की चिन्ता है। बूढ़ी को घर के काम-काज और अपनी सेवा के लिए उसकी जरूरत है। कोई नहीं खयाल करता कि आखिर उसे भी तो कुछ चाहिए। लेकिन किसी को खयाल भी कैसे हो सकता? स्वप्न में भी कोई यह कल्पना कैसे कर सकता कि एक क्षत्री-कुल की बेवा बहू···असम्भव, असम्भव! और भाभी में फिर जैसे एक शून्यता

भर उठने को होती कि तभी जैसे कोई कानों में गुनगुना उठता, "मुझे तुम्हारी बहुत चिन्ता है, भाभी ! मैं रात-दिन तुम्हारी रट लगाये रहता हूँ। तुमसे मैं कितनी मोहब्बत करता था। मुझे आ जाने दो भाभी, फिर तो···"

और भाभी फिर एक हिंडोले में झूलने लगती। कोई परवाह करे या न करे, वह तो···और वह काम में मग्न हो जाती।

फिर पहले ही का कार्यक्रम चलने लगता था। वही पूजा, वही रामायण-पाठ, वही सब-कुछ। वह ठाकुर से प्रार्थना करती, 'तेरी बाँह बड़ी लम्बी है, ठाकुर। नामुमकिन को भी मुमकिन करना तेरे लिए कोई मुश्किल नहीं। कुछ ऐसा करना कि···'

बिलरा को भूसे की खाँची थमाने जाती तो जाने क्यों उसके मन में उठता कि बिलरा फिर वही बात कहे। लेकिन बिलरा भय खाकर सिर झुकाये रहता। एक दिन भाभी ने ही टोका, "क्यों रे, तुझे कोई हत्या लगी है क्या, कि इस तरह चुप बना रहता है ?"

सिर झुकाये ही बिलरा ने कहा, "सच ही छोटी मालकिन, क्या मेरे मुँह से उस दिन ऐसी कोई बात निकल गई थी···"

"अरे, वह तो मैं भूल भी गई। नाहक तू···"

"छोटी मालकिन, मैं मन की बात न रोक सका, कह डाली। मेरे कहने से तुमको कष्ट हुआ। मुझे माफ कर दो। छोटी मालकिन, हम लोगों के दिल में कोई ऐंठ नहीं होती। तुम लोग तो मन में कुछ और रखते हो, मुँह से कुछ और कहते हो। मुझे तो ताज्जुब होता है कि बड़े मालिक और मालकिन किन आँखों से तुम्हारा यह रूप देखते हैं। मेरा तो कलेजा फटता है। इसी उम्र से तुम साधुनी बनकर कैसे रह सकती हो ? इसीलिए मन में उठा कि कहीं छोटे मालिक के साथ तुम्हारा···"

भाभी का मन गद्गद् हो गया। आँखें मुँद-सी गईं। लेकिन दूसरे ही क्षण जैसे किसी ने खींचकर एक थप्पड़ जमा दिया हो। वह

बोली, "ऐसी बात न कहा कर बिलरा।" और अन्दर भाग गई।

बिलरा कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। फिर होंठों पर एक करुण मुस्कान लिये नाँद की ओर चल पड़ा। सोच रहा था कि उस दिन का गरम लोहा आज कुछ ठण्डा पड़ गया है। आज डाँट नहीं खानी पड़ी। सच, अगर ऐसा हो जाता तो कितना अच्छा होता! बेचारी की जिन्दगी सुख से कट जाती। छोटे मालिक ब्याह न कर सकें तो उसे रख तो सकते ही हैं। कितने ही उनकी बिरादरी के ऐसा करते हैं। सुनने में तो आता है कि इनके परदादा भी एक चमारिन को रखे हुए थे। फिर यह तो उनकी भाभी ही है। थोड़े दिन हो-हल्ला होगा फिर सब आप ही शान्त हो जाएगा। कसाइयों के हाथ पड़ी एक गऊ की जान तो बच जाएगी। कितना पुण्य होगा!

महीने-दो-महीने में रात-बिरात मटरू सर-समाचार लेने जरूर आ जाता। अब वह मट्ठा भी फूँककर पीता था। दुश्मनों को भूलकर भी अब वह कोई ऐसा मौका देने को तैयार न था कि पहले ही की तरह फिर पकड़ में आ सके। वह दीयर कभी नहीं छोड़ता। जानता था कि इस प्रकृति के किले में कोई उस पर हमला करने की हिम्मत न करेगा। अब वह पहले की तरह अकेला भी न था। उसकी झोंपड़ी के पास दर्जनों झोंपड़ियाँ बस गई थीं। पचासों किसान नौजवान अपनी लाठियों के साथ उनमें रहते थे। कई अखाड़े भी खुल गए थे। सबके बैल और भैंसें भी वहीं रहतीं। मटरू जब छूटकर आया था तो रब्बी की फसल कट चुकी थी। सबका ख्याल था कि दीयर में सिर्फ रब्बी की ही फसल बोई जा सकती है। फिर तो बरसात ही शुरू हो जाती है और चारों ओर पानी-ही-पानी नजर आता है। लेकिन मटरू खाली बैठना न चाहता था। उसने तय किया कि अब ऊख बोई जाए। सबने ना-ना किया। लेकिन मटरू न माना। उसने कहा कि 'गंगा मैया' की

ा होगी तो ऊख भी होगी। ऊँची, अच्छी मिट्टी की ज़मीन देखकर
सने ऊख वो दी। उसकी देखा-देखी औरों ने भी हिम्मत की। एक
ा जो हाल होगा सबका होगा। जाएगा तो बीया, और कहीं आ गया,
ी गुड़ रखने की जगह न मिलेगी।

दीयर गुलज़ार हो गया। झोंपड़ियाँ बस गईं। चूल्हे जलने लगे। भैंसें रँभाने लगीं। अखाड़े जम गए। बिना किसी विशेष मेहनत के ऊख ऐसी आयी कि देखने वालों को ताज्जुब होता। तर, चिकनी मिट्टी का मुकाबला बाँगर की मिट्टी क्या करती? वहाँ तो चार-चार हाथ की भी ऊख हो जाए तो बहुत, वह भी लाख मशक्कत के बाद। और यहाँ जो ऊखों ने सिर उठाया तो ऐसा लगा कि हाथी डूब जाएँ। बस अब डर था तो 'गंगा मैया' का। बरसात सिर पर चढ़ आई थी। नदी बढ़ने लगी थी। सबकी धुकधुकी उसी ओर लगी थी। सब कहते "गंगा मैया ने किरिपा कर दी, तो ऊख काटे न कटेगी।" सब यही मिनती करते कि 'गंगा मैया' इस साल धार पलट दे।

कुछ ऐसी होनहार कि सच ही नदी की खास धारा अब की उस पार बन गई। पानी इधर भी खूब फैला, लेकिन दस-पन्द्रह दिन में ही ऊखों की जड़ों में और भी मिट्टी छोड़कर चला गया। किसानों की खुशी का ठिकाना न रहा। मटरू की शाबाशी होने लगी। उसने कहा, "यह सब 'गंगा मैया' की किरिपा है।"

ज़मींदारों ने सीधे तौर पर छेड़ने की कोशिश न की थी। अब मटरू अकेला न रह गया था। सुनने में बस यही आया कि उन्होंने सदर में दरख्वास्त दी है कि किसानों ने उनकी जमीन पर कब्जा कर लिया है; सरकार पेड़ताल कराये और बागियों को दण्ड दे। वरन बलवा होने का अन्देशा है।

फिर क्या हुआ, कुछ पता न चला। सरकार का दरबार बहुत दू
है, जाते-जाते पुकार पहुँचेगी। होते-होते सुनवाई होगी। तब तक क
दीयर में कोई निशान बाकी रह जाएगा? और फिर कुछ होगा

देखा जाएगा। पटवारी के नक्शे में तो बन बीयर लिखा है, कागज-पत्तर में भी दीयर किसी के नाम नहीं। कोई मेंड-डांड तो बन नहीं सकता, यहाँ बनायी भी जाए, तो क्या 'गंगा मैया' रहने देगी? सरकार क्या खाक पड़ताल करेगी?

बरसात में मटरू और उसके साथी काफी होशियारी से रहे। एक तरह से अब उनका एक दल बन गया था। ग्राम-पास के गाँवों के किसान उनके भाई-बन्द थे। हर बात की वे खोज-खबर लेते रहते और मटरू के कान में पहुँचाया करते। अब मटरू पर जान देने वाले सैकड़ों थे। यों भी मटरू को पकड़ ले जाना आसान न था।

मटरू रात को ही अपने दस-पाँच साथियों के साथ गोपी के घर आता और रात रहते ही चला जाता। सब उसका सत्कार बड़ी उमग से करते। सास-ससुर पूछते, "गोपी की शादी की कहीं बात चलायी?"

मटरू कहता, "अरे, हमें चलाने की क्या जरूरत? दर्जनों यों ही मुँह-बाये बैठे हैं। उसे आ तो जाने दो। फिर एक महीने के अन्दर ही शादी लो। वह बहू ला दूँगा कि गाँव देखेगा।"

मटरू गोपी को बराबर चिट्ठी देता। लेकिन उसने भी गोपी को उसकी औरत के बारे में कुछ न लिखा था। क्यों खामखाह के लिए दुख का समाचार लिखे। न जाने उसके चले आने के बाद गोपी की कैसे कटती है। कई बार सोचा कि मिल आए। लेकिन फुरसत कहाँ? फिर 'गंगा मैया'। को वह कैसे छोड़े; अपने किसान भाइयों को कैसे छोड़े। उसीके दम से तो सब में दम है। कहीं उसकी गैरहाजिरी में जमींदार कुछ कर बैठें तो?

अन्दर खाने जाता तो भाभी के बनाये खयका की प्रशंसा करके कहता, "तभी तो गोपी लट्टू है। मैं भी कहूँ, क्या बात है? इतना बढ़िया खयका जो एक बार खा लेगा, वह क्या गोपी की भौजी को कभी

भूल सकता है ?"

सास भी कहती, "ये दोनों बहनें बड़ी गुनवती थीं, बेटा करम को क्या कहूँ ?"

भाभी सुनती और मन-ही-मन जाने क्या-क्या गुनती। एक बार तो मौका निकालकर उसने अपने को मटरू को दिखा भी दिया था। मटरू खुद भी उसे देखने को उत्सुक था। वह देखकर जैसे छाती पर एक घूंसा खा गया था। उसने कब सोचा था कि गोपी की भौजी अभी ऐसी जवान है, ऐसा बिजली-सा उसका रूप है। तभी से उसका दिल भाभी के प्रति सहानुभूति से भर गया था। कभी-कभी बड़ी मीठी-मीठी बातें वह यही सहानुभूति दरशाने के लिए माँ से भाभी के बारे में कह देता। भाभी निहाल हो उठती।

मटरू को चिन्ता लग गई। गोपी की भौजी-सी सुन्दर बहू गोपी के लिए कहाँ से खोजकर लाएगा ? उसने तो आज तक ऐसी औरत कहीं न देखी। गोपी उस पर जान देता है, तो इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। ऐसी औरत पर कौन जान न देगा ? इसीकी तरह इसकी बहन भी तो होगी ? फिर दूसरी से उसका मन कैसे भरेगा ?

और मटरू के मन में खिलरा के मन की बात उठ खड़ी हुई। सदा दीयर में स्वच्छन्द रहने वाले मटरू के मन पर बिरादरी के रीति-रिवाज का उतना संस्कार न चढ़ा था। उसने स्वच्छन्दता से ही जीवन बिताया था। जब जो मन में उठा था, वैसा ही किया था। कभी कोई बन्धन न माना था। वह तो बस इतना ही जानता था कि आदमी के पास बल और बहादुरी होनी चाहिए। फिर कौन रोक सकता है उसे कुछ करने से ? उसने तो यह भी तय कर लिया कि अगर गोपी तैयार हो गया, तो वह यह करके ही दम लेगा। बहुत होगा, गोपी को अपना घर छोड़ देना पड़ेगा। तो उसके दीयर में एक झोंपड़ी और बस जाएगी। उसी-की तरह वह भी रहें-सहेंगे। चिरई की जान तो बच जाएगी।

ग्यारह

•

गोपी अपनी सजा काटकर जब छूटा तो उसे और कैदियों की तरह वह खुशी न हुई जो कैद से छूटने के वक्त होती है। आज वह अपने घर की ओर जा रहा है। आखिर उसे आज अपनी उस विधवा भाभी के सामने जाकर खड़ा होना ही पड़ेगा, उसे उस दशा में, अपनी इन आँखों से देखना ही पड़ेगा, जिसके लिए करीब पाँच वर्षों में भी वह पर्याप्त साहस नहीं बटोर सका है।

गाँव में जब वह घुसा तो सन्ध्या की धुँधली छाया पृथ्वी पर झुकी आ रही थी। जाड़े के दिन थे। चारों ओर अभी से सन्नाटा छा गया था। पोखरे से एकाध आदमियों के ही खाँसने-खँखारने की आवाज आ रही थी। घाट सूना था। गाँव के ऊपर जमे हुए धुएँ का बादल धीरे-धीरे नीचे सरका आ रहा था।

आगे बढ़कर गोपी ने सोचा कि किसी से घर का समाचार पूछे। लेकिन फिर ठिठक गया। पास ही छोटा मन्दिर था, सोचा पुजारीजी के पास ही क्यों न चले। भगवान् के दर्शन भी कर ले, पुजारीजी से समाचार भी पूछ ले। गोपी का दिल लरज रहा था। सालों दूर रहने से उसके मन में यह बात उठ रही थी कि जाने इस बीच क्या-क्या हो गया हो। उसे डर लग रहा था कि कहीं कोई उसे कोई बुरी खबर न सुना दे।

मन्दिर उसे वीरान-सा दिखाई दिया। आश्चर्य हुआ कि ऐसा क्यों? यह भगवान् की आरती का समय है। फिर भी सन्नाटा छाया हुआ है। चबूतरे पर कोई बूढ़ा भिखमंगा अपनी गठरी रखे, लिट्टी सेंकने के लिए कहरा सुलगा रहा था। उसने गोपी को पास खड़े देखा तो पूछा, "का है भैया?"

"मन्दिर बन्द क्यों है? पुजारीजी नहीं हैं क्या?" गोपी ने

पास जाकर पूछा।

भिगमंगा जोर से हँस पड़ा। दांत न होने के कारण ढेर-सा थूक उसके होंठों से वह पड़ा। वह बोला, "तुम यहाँ के रहने वाले नहीं हो क्या ? अरे, पुजारी को भागे हुए तो आज तीन साल के करीब हो गए। गाँव की एक वेवा के साथ पकड़ा गया था। उसे लेकर जाने कहाँ मुँह काला कर गया।" और फिर ज़ोर से अट्टहास कर उठा।

गोपी के कांपते हाथ अपने कानों पर पहुँच गए। उसका दिल ज़ोरों से धड़क उठा। उससे ऐक क्षण भी वहाँ न ठहरा गया। असीम व्याकुलता लिये वह सीधे अपने घर की ओर बढ़ा। एक आशंका उसके मन को कँपा रही थी कि कहीं······

अपने घरों के सामने कौड़े के पास वैठे जिन-जिन लोगों ने उस दुख और व्याकुलता की मूर्ति को गुज़रते हुए देखा, वे चुपचुप उसके साथ हो लिए। मूक दृष्टि में कभी-कभी गोपी उनकी जुहार का उत्तर दे देता। न किसी से कुछ पूछने की मनःस्थिति उसकी थी, न लोगों की। लग रहा था जैसे वे सब अपने किसी प्यारे की लाश जलाकर मौन और उदास लौट रहे हों।

घर वालों को तब तक किसी ने दौड़कर गोपी के आने की सूचना दे दी थी। गोपी अभी अपने घर से कुछ दूर ही था कि उसके कानों में अपने घर की दिशा से जोर-ज़ोर से चीख-चीखकर रोने की आवाज़ें आने लगीं। उसका दिल वैठने लगा। रोम-रोम व्याकुलता की तड़प से काँप उठा। पैरों में कँपकँपी छूटने लगी। आँखों के सामने अन्धकार-सा छा गया। दिमाग में चक्कर-सा आने लगा। उसके साथ-साथ चलने वाले लोगों से उसकी यह दशा छिपी न रही। कुछ ने बढ़कर उसे सहारा दिया। एक के मुँह से यों ही निकल गया, "होश-हवास खो वैठा है वेचारा। भीम की तरह भाई के मरने का दुख क्या कम था जो विधाता ने इसकी औरत को भी छीन लिया ?"

गोपी के कानों में इसकी भनक पड़ी, तो मुड़कर आँखें फाड़े वह

पूछ बैठा, "क्या ?"

कइयों ने साथ ही कहा, "अब दुख करने से क्या होगा भैया ? उनका-तुम्हारा उतने ही दिन का सम्बन्ध लिखा था। अब जो रह गए हैं, उन्हीको सँभालो। अब उन्हें तुम्हारा ही तो सहारा रह गया है।"

गोपी को लगा, जैसे एक बिजली की तरह जलता शूल उसके दिल में कौंधकर उसके तन-मन को जलाता सन्न से निकल गया। वह गश खाकर सहारा देने वालों के हाथों में आ रहा।

उसे घर ले जाकर लोगों ने चारपाई पर लेटा दिया और पानी के छींटे दे उसे होश में लाने लगे। औरतों ने रोते-रोते, बेहाल हुई माँ और भाभी को, और बड़े-बूढ़ों ने बिस्तर पर कूल्हते पिता को किसी तरह यह कहकर चुप कराया कि अगर बड़े होकर वही सब इस तरह तड़प-तड़पकर जान दे देंगे तो गोपी का क्या होगा।

दुख की घटा छायी रही उस घर पर महीनों। व्यथा के आँसू बरसते रहे सबकी आँखों से महीनों।

दुख की जितनी शक्ति है, उससे कहीं अधिक प्रकृति ने आदमी को सहन-शक्ति दी है। जिस तरह दुख की कोई निश्चित सीमा नहीं, उसी तरह मनुष्य की सहन-शक्ति भी असीम है। जिस दुख की कल्पना-मात्र से मनुष्य की आत्मा की नींव तक काँप उठती है, वही दुख जब सहसा उसके सिर पर भहराकर आ गिरता है तो जाने कहाँ से उसमें उसे सहन करने की शक्ति भी आ जाती है। उसे वह हँसकर या रोकर झेल ही लेता है। दुख की काली घटा के नीचे बैठकर वह तड़पता है, रोता है। रो-रोकर ही वह दुख को भुला देता है। घटा छँटती है। खुशी का प्रकाश चमकता है और आदमी हँस देता है। उसे यह बात भी भूल जाती है कि कभी उस पर दुख की घटा भी छायी थी, कभी वह रोया और तड़पा भी था। यह बात कुछ असाधारण मनुष्यों पर भले ही

लागू न हो, पर साधारण मनुष्यों के लिए सर्वथा सच है।

गोपी, उसके माता-पिता और भाभी साधारण ही मनुष्य तो थे। व्यथा के उमड़ते-घुमड़ते सागर में सालों दुख के थपेड़े खाकर धीरे-धीरे उन्हें लगने लगा कि वे व्यथा और दुख की गरजती लहरें कुछ करुण और कुछ मधुर स्मृतियों की मन्द-मन्द लहरियाँ बन उनके व्यथित हृदयों को अपने कोमल करों से सहला-सहलाकर कुछ आशा, कुछ सुख के भीने-भीने जाल बुनने लगी हैं।

भाभी और देवर, दोनों एक ही तरह के दुर्भाग्य के शिकार थे। उनकी समझ में न आता कि वे कैसे एक-दूसरे को सान्त्वना दें। भाभी ने पूर्ववत् अपने को पूजा और घर के कामों में उलझा दिया था। वह यन्त्र की तरह सब-कुछ करती, जैसे वही सब करने के लिए उस यन्त्र का निर्माण हुआ हो, जैसे यह यन्त्र एक ही रफ्तार से इसी तरह जब तक चलता रहेगा, काम करता रहेगा। इसके नियम में कभी कोई परिवर्तन न होगा। हाँ, धीरे-धीरे, जैसे-जैसे इसके पुरजे घिसते जाएँगे, इसकी चाल में शिथिलता आती जाएगी; फिर एक दिन इसके पुरजे बिखर जाएँगे; यह यन्त्र टूट जाएगा हमेशा के लिए।

भाभी अब कहीं अधिक गम्भीर और चुप और उदास बन गई थी। मानो अपनी पूजा और कामों के सिवा उसके जीवन में कुछ हो ही नहीं।

गोपी भाभी को देखता और उस निस्सीम उदासीनता, नीरसता और दुख में लिपटी हुई बीमार-सी पुतली को देखकर सोचता कि क्या वह ऐसे ही अपना जीवन बिता देगी? क्या वह सचमुच उसे ऐसे ही जीवन बिता देने देगा? दुनिया के हर बाग में पतझड़ आता है, फिर वसन्त आता है। क्या भाभी के जीवन में एक बार पतझड़ आकर सदा बना रहेगा? क्या फिर उसमें कभी वसन्त न आएगा? क्या फिर एक बार उसमें वसन्त लाया ही नहीं जा सकता? पतझड़ में चुप हुई बुलबुल क्या हमेशा के लिए ही चुप हो जाएगी? क्या उसकी चहक वह एक बार फिर न सुन सकेगा?

गोपी अपने समाज के रीति-रिवाज से परिचित है। वह जानता है कि उसकी बिरादरी की विधवा लकड़ी का वह कुन्दा है जिसमें उसके पति की चिता की आग एक बार जो लगा दी जाती है, तो वह जलता रहता है; तब तक जलता रहता है, जब तक जलकर राख नहीं हो जाता। उसे राख हो जाने के पहले किसी को छूने की हिम्मत नहीं होती, बुझाने की तो बात ही दूर। और गोपी सोचता है कि क्या उसकी भाभी भी उसी तरह जलकर राख हो जाएगी? वह उस लगी आग को कभी बुझा न सकेगा? गोपी के मन की आँखों के सामने ये प्रश्न हर क्षण चक्कर लगाते रहते हैं। और वह सदा जैसे उन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ निकालने में डूबा-सा रहता है। भाभी के सुख-दुख का स्थान यों भी उसके जीवन में कभी कम नहीं रहा है, पर अब जब भाभी के जीवन में कभी भी खतम न होने वाली वीरानी आ गई है, तो उनका स्थान उसके हृदय में और भी गहरा हो गया है। वह एक तरह से अपने विषय में कुछ न सोच, सदा भाभी के विषय में ही सोचा करता है कि कैसे वह अपनी स्नेहशीला भाभी को फिर एक बार पहले ही की तरह चहकती हुई देखे।

•

दुनिया चाहे जिस परिस्थिति में रहे, बेटों वाले बापों को चैन कहाँ? गोपी के जेल से आने का पता जैसे ही उन्हें चला, फिर उन्होंने दौड़ना-धूपना शुरू कर दिया। गोपी के जेल से लौटने की ही तो पख थी। अब शादी पक्की करने में कोई उज्र नहीं होना चाहिए। पिता उन्हें सीधे गोपी से बात करने को कह देते। अपंग आदमी ठहरे। सब-कुछ अब गोपी को ही तो करना-धरना है। वह जैसा मुनासिब समझे, करे।

गोपी उन्हें देखकर जल-भुन जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि भाभी के सामने वह कैसे अपना ब्याह रचा सकता है। वह किन आँखों से उस खुशी के उत्सव को देखेगी, किन कानों से ब्याह के

गीत सुनेगी, किस हृदय से वह सब सह सकेगी ? नहीं-नहीं, गोपी जले पर इस तरह नमक नहीं छिड़क सकता। ऐसा करने से तो खुद उसका दिल भी छलनी-छलनी हो जाएगा।

उसके जी में आता है कि वह मेहमानों को फटकार बताकर कह दे, 'तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी बातें मुझसे कहते ? कुछ नहीं, तो कम-से-कम एक इन्सान होने के नाते ही मेरे दिल की हालत तो समझने की कोशिश करो। शादी की बात करके मेरे हरे जख्मों पर इस तरह नमक तो न छिड़को !' लेकिन सौजन्यतावश वह शादी न करने की बात कहकर उन्हें टाल देता है। वे उसे उलझाने की कोशिश करते पूछते हैं, "आखिर ऐसा तुम क्यों कहते हो ?"

गोपी चुप रहता है। वह कैसे बताये कि वह ऐसा क्यों कहता है ?

"आखिर इस उम्र से ही तुम इस तरह कैसे रह सकते हो ?" दूसरा सवाल फेंका जाता है।

गोपी का मन पूछना चाहता है कि भाभी की उम्र भी तो मेरे ही बराबर है, आखिर वह कैसे रहेगी ? लेकिन वह चुप ही रहता है।

तीसरा कम्पा लगाया जाता है, "एक-न-एक दिन तो तुम्हें घर बसाना ही पड़ेगा, बेटा !"

और गोपी कहना चाहता है कि 'क्या यही बात भाभी से भी कही जा सकती है ?' लेकिन उसके मुँह से कोई बोल ही नहीं फूटता। अन्दर-ही-अन्दर एक गुस्सा घुमड़ने लगता है।

"और नहीं तो क्या ? कोई बाल-बच्चा होता तो एक बात होती," चौथी बार लासा लगाया जाता है। "लड़का चुप है। इसके मानी यह कि उस पर असर पड़ रहा है। शायद मान जाए।"

'भाभी के भी तो कोई बाल-बच्चा नहीं। क्या उसे इसकी जरूरत नहीं ?' गोपी के दिल में एक मूक प्रश्न उठता है। उसके होंठ फिर भी नहीं हिलते। गुस्सा उभरा आ रहा है। नथुने फड़कने लगे हैं।

"खानदान का नाम-निशान चलाने के लिए…"

और गोपी और ज्यादा कुछ सुनने की ताव न लाकर गरजते बादल की तरह कडक उठता है, "तुम्हें मेरे खानदान की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। तुम चले जाम्रो!"

"अजीब आदमी है! हम कैसे बातें कर रहे हैं और यह कैसे बोल रहा है?" कहता हुआ अपमान का कड़वा घूंट पीकर मेहमान कहते, "दर-दहेज की अगर कोई बात हो तो..."

"कुछ नहीं, कुछ नहीं! मैं शादी नहीं करूंगा। नहीं करूंगा! नहीं करूंगा!" और वह खुद वहाँ से उठकर हट जाता।

पर यह सिलसिला टूटने को न आता। और अब तो वह किसी ऐसे मेहमान के आने की खबर सुनता है तो पागल-सा हो जाता है। उसके हृदय का द्वन्द्व और भी तीव्र हो उठता है। वह जैसे अपने से मूक स्वरों मे पूछने लगता है, "कैसे, कैसे? कैसे अपनी विधवा भाभी की वीरान आँखों के सामने मैं अपने ब्याह के रास-रंग की रचना करूं? कैसे अपने हृदय की तड़प की पुकार न सुनकर, मैं एक अबोध कन्या को लाकर अपना सुख का संसार बसाऊं? नहीं, नहीं, नहीं! यह नहीं हो सकता!" और वह फूट-फूटकर रो पड़ता।

बारह

०

दीयर में इस साल खूब हुमककर रब्बी आयी थी। गोलों पकी गेहूं की फसल से जैसे आसमान लाल हो उठा था। कटिया लगने की खबर पाकर दूर-दूर से कितने ही औरत-मर्द बनिहार आकर वहाँ बस

गए थे। कम-से-कम पन्द्रह-बीस दिन कटिया चलेगी। मटरू पहलवान खूब बन देता है और दूसरे किसानों को भी ताकीद कर दी है कि बनिहारों के बन में कोई कमी न करें। सो बनिहार मोटरी बाँध-बाँधकर अनाज ले जाएँगे।

'गंगा मैया' के किनारे एक मेला-सा लग गया है। कई दुकानदार भी घाटी-पिसान, साग-सत्तू, बीड़ी-तमाकू की छोटी-छोटी दुकानें लगाकर बैठ गए हैं। अनाज के बदले वे सौदा देते हैं। पैसा यहाँ किसके पास है! बनिहारों को रोज जो शाम को बन मिलता है, उसी में से खर्चे के लिए वे थोड़ा मिस लेते हैं और जरूरत की चीजों से दुकानदारों के यहाँ बदल आते हैं। दिन में तो सभी बनिहार सत्तू खाते हैं। लेकिन रात में रोटी-लिट्टी सेंकने के लिए जब सैकड़ों अहरे गंगा मैया के किनारे जल उठते हैं, तो मालूम होता है, जैसे आसमान में धुएँ के बादल छा गए हों।

मटरू यह सब देखता है तो फूला नहीं समाता। लोग-बाग मटरू की इतनी सराहना करते हैं कि वह शरमा जाता है। लोग कहते हैं यह मटरू पहलवान का बसाया इलाका है। दूसरे किसमें इतनी सूझ और हिम्मत थी जो जंगल को भी गुलजार कर देता! पुश्तों से दीयर पड़ा था। कभी कहीं कोई दिखाई न देता था। अब वही धरती है कि मेला लग गया है। सैकड़ों किसानों और बनिहारों की रोजी का सहारा लग गया है। सब उसे असीस दे रहे हैं। पुश्तों से धाँधली करके जमींदार जंगल बेचकर हजारों हड़पते रहे। मटरू पहलवान के पहले था कोई उनका हाथ पकड़ने वाला? भाई, आदमी हो तो मटरू पहलवान की तरह! शेर है, शेर! उस पर हजारों आदमी क्या यों ही जान दे रहे हैं? दिलों पर ऐसे ही इन्सान राज करते हैं। अब है जमींदारों की मजाल कि उसकी तरफ आँख दिखा दे?

मटरू सुनता है तो दोनों हाथ नदी की ओर उठाकर कहता है, "यह सब हमारी 'गंगा मैया' की किरपा है। उसके भंडार में किसी चीज

की कमी नहीं, लेने वाला चाहिए भैया, देने वाला। माँ का आँचल क्या कभी बेटों के लिए खाली होता है ? वह भी जगत् की माता, 'गंगा मैया' का !"

कृष्ण-पक्ष का चाँद जैसे ही आसमान में प्रकट हुआ मटरू और पूजन ने बनिहारों को हाँक देना शुरू कर दिया। दिन में गरमी और लू के मारे बनिहार परेशान हो जाते हैं; ठण्डी सुबह के दो-तीन घण्टे में जितना काम हो जाता है, उतना दिन के आठ-दस घण्टों में भी नहीं होता। बनिहार नदी के किनारे ठण्डी रेत पर गहरी नींद में कतार लगाकर सोए थे। बड़ी प्यारी उतरिया हवा बह रही थी। चाँद मीठी शीतलता की बारिश कर रहा था। नदी धीमे-धीमे कोई मधुर गीत गुनगुना रही थी। हाँक सुनते ही बनिहार और बनिहारिनें उठ खड़ी हुईं। आलस का कहीं नाम नहीं। थकी देहों को नदी की हवा जैसे ही छूती है उनमें फिर से वही ताजगी और स्फूर्ति आ जाती है। यहाँ की दो-चार घण्टे की नींद में गाँवों की रात-भर की नींद से भी कहीं ज्यादा आराम और विश्राम आदमी को मिल जाता है।

डाँड़ पर आग सुलग रही है। पास ही तमाखू और खैनी रखी हुई है। जो तमाखू पीता है, वह चिलम भर रहा है। जो खैनी खाता है, वह सुरती फटक रहा है। थोड़ी देर तक बूढ़े-बूढ़ियों की खों-खों से दिशा भर जाती है; फिर कटनी शुरू हो जाती है।

खेत की पूरी चौड़ाई में बनिहार और बनिहारिनें कतार लगाकर पाँवों पर बैठी काट रही हैं, बनिहार एक ओर बनिहारिनें दूसरी ओर। एक सिरे पर मटरू जुटा और दूसरे पर पूजन। पूजन ने बगल की बूढ़ी औरत को कुहनी मारकर हँसते हुए कहा, "काकी, एक बढ़िया गीत !

बूढ़ी ने मुस्कराकर अपनी बगल वाली को कुहनी मारी, और फि

पूरी जंजीर झनझना उठी। नवेलियों ने खाँसकर गला साफ किया। एकाध क्षण 'तू कढ़ा, तू कढ़ा' रहा। फिर धरती की बेटियों के कण्ठ से धरती का जंगली मधु-सा मीठा गीत फूट पड़ा; चेहरे दमक उठे, आँखें चमक उठीं, हाथों में तेजी आ गई। काम और संगीत की लय बँधी, फिजा झूम उठी, चाँद और सितारे नाचने लगे, 'गंगा मैया' की लहरें उन्मत्त हो-होकर तट से टकराने लगीं।

'ए पिया, तू परदेस न जा,
वहाँ तुझे क्या मिलेगा, क्या मिलेगा?
यहाँ खेत पक गए हैं, सोने की बालियाँ झूम रही हैं।
मैं हँसिया लेकर भिनसारे जाऊँगी,
गा-नाचकर फसलों के देवता को रिझाऊँगी,
खुश होकर वह नया अन्न देगा, मैं फाड़ भरकर लाऊँगी।
कूटूँगी, पीसूँगी, पूआ पकाऊँगी,
ठहर दे के पीढ़े पर तुझको बैठाऊँगी,
अपने ही हाथों से रच-रच खिलाऊँगी।
याद है तुझे वह पिछली फसल की बात?
ए पिया, तू परदेस न जा!
वहाँ तुझे क्या मिलेगा, क्या मिलेगा?

ऊषा की सिन्दूरी आभा धीरे-धीरे खेतों में फैलकर रंगीन झील की तरह मुस्करा उठी। बनिहारों और बनिहारिनों के चेहरे स्वर्ण-मूर्तियों की तरह दमक उठे। नदी का पानी सुनहरे आबे-रवाँ के दुपट्टे की तरह लहरा उठा। कहीं दूर से दरियाई पंछियों की कूकें शान्त, सुहाने वातावरण में गूँजने लगीं। प्रकृति ने एक मीठी अँगड़ाई लेकर खुमार-भरी पलकें उठाईं। सूरज की पहली किरण ने उसके अधर चूमे और चर-अचर ने झूमकर जीवन और प्रेम की रागिनी छेड़ दी।

मटरू के कानों में आवाज पड़ी, "मटरू भैया!"

अकचकाकर मटरू ने देखा और लपककर गोपी के गले से लिपटकर

कहा, "गोपी, अरे गोपी, तू कब आ गया भैया ?"

"खूब पूछ रहे हो ? चार-पांच महीने हो गए हमें आए। खबर भी न ली ?" गोपी ने शिकायत की।

"इतनी जल्दी कैसे छूट गए ? मैं तो सोचता था, इस महीने में छूटोगे," उसके दोनों बाजुओं को अपने हाथों से दबाता मटरू बोला।

"छः महीने और 'रेमिशन' के मिल गए। सुना कि उधर तुम बराबर घर आते-जाते रहे। इधर क्यों नहीं आए ? मैं तो बराबर तुम्हारा इन्तजार करता रहा। मजे में तो रहे ?" गोपी बोला।

"हाँ, गंगा मैया की सब कृपा है। तुम अपनी कहो। इधर कामों में बहुत फँसे रहे। यहाँ से हटना बड़ा मुश्किल होता है। सोचा था कि कटनी खतम होते ही तुम्हारे यहाँ एक रात हो आऊँगा। अच्छा किया कि तुम आ गए। मेरे तो पाँव फँस गए हैं।" अपनी झोंपड़ी की ओर गोपी को ले जाते मटरू ने कहा।

"तुम तो कहते थे कि यहाँ अकेले तुम्हीं रहते हो; मैं देखता हूँ कि यहाँ तो एक छोटा-मोटा गाँव ही बस गया है," चारों ओर देखता हुआ गोपी बोला।

मटरू हँसा। बोला, "सब गंगा मैया की कृपा है। अब तो सैकड़ों किसान हमारे साथ यहाँ बस गए हैं। मटरू अब अकेला नहीं है। उसका परिवार बहुत बड़ा हो गया है।" और वह फिर हँस पड़ा।

झोंपड़ी के सामने लखना कन्धे तक दाहिने हाथ में सानी-भूसा लिपटाये खड़ा उन्हें देख रहा था। मटरू ने कहा, "तेरा चाचा है वे, क्या देख रहा है ? चल पाँव पकड़ !"

लखना पाँव पकड़ने लगा तो गोपी ने उसे हाथों से उठाकर कहा, "बड़का है न ?"

"हाँ," मटरू ने कहा, "क्यों वे, भैंस दुह चुका ?"

"हाँ," लड़के ने सिर झुकाकर कहा।

"तो चल, चाचा के लिए एक लोटा दूध ला तो। और हाँ, लपक-

कर खेत पर जा। पाती छोड़कर आया हूँ।" चटाई पर गोपी को बैठाते मटरू ने कहा।

"अरे, अभी तो मुँह-हाथ भी नहीं धोया। क्या जल्दी है ?" गोपी ने कहा।

"शेर भी कहीं मुँह धोते हैं! और फिर दूध के लिए क्या मुँह धोना!" हँसकर मटरू ने कहा।

जेल, घर की सब बातें कहकर गोपी ने कहा, "प्राण संकट में पड़ गए हैं। तुमसे राय लेने चला आया। अब तुम्हीं उबारो, तो जान बचे। रोज-रोज मेहमान घर खोन-खा रहे हैं। समझ में नहीं आता, क्या करूँ। भाभी की दशा नहीं देखी जाती। बड़ा मोह लगता है। उसकी छाती पर खुशी मनाना हमसे तो न होगा।"

"सच पूछो तो इसी उधेड़-बुन में मैं भी पड़ा था। वहाँ जाने पर माई और बाबूजी तुम्हारी शादी पक्की करने की बात कहते थे और मैं टाल जाता था। जब से तुम्हारी भाभी को देखा, दुनिया-भर की लड़कियाँ नज़र से उतर गईं। सोचा था, तुम आ जाओ, तो कुछ सोचा जाए। भैया, सच कहना, तेरा मन भाभी के साथ शादी करने को है ? हमको तो लगता है कि तुम उसे बहुत मानते हो।"

"मेरे चाहने से ही क्या हो जाएगा ?" गोपी ने उदास होकर कहा।

"क्यों न होगा ? मर्द हो कि कोई ठट्ठा है। सारी दुनिया के खिलाफ तुम्हारा मटरू अकेले तुम्हें लेकर खड़ा होगा। क्या समझते हो मुझे ? मैंने तो यहाँ तक सोचा था कि अगर तुम्हारे माँ-बाप तुम्हें घर से निकाल दें, तो यहाँ मेरी झोंपड़ी के पास एक और झोंपड़ी खड़ी हो जाएगी। और देख रहे हो न ये खेत। मिल-जुलकर काम करेंगे, कमाएँगे और खाएँगे। कोई साला हमारा क्या कर लेगा! सच कहूँ, गोपी, तेरी भाभी की सोचकर मेरा भी कलेजा फटता है। तू उसे अपना ले।

बड़ा पुण्य होगा भैया ! कसाई के हाथ से एक गऊ और सिकार के हाथ से एक चिरई बचाने में जो पुण्य मिलता है, वही तुझे मिलेगा। बहादुर ऐसे मौके पर पीठ नहीं फेरते।" गोपी की पीठ ठोंकते मटरू ने कहा।

"लेकिन उसकी भी तो कोई बात मालूम हो। जाने क्या सोच रही हो ! वह तैयार होगी भैया ?" गोपी ने होंठों में कहा।

"अरे, पाँच महीने तुझे आए हो गए, और तुझे यह भी मालूम नहीं हुआ ?" मटरू ने आश्चर्य प्रकट किया।

"कैसे मालूम हो भैया ? वह तो बिलकुल गूँगी हो गई है। बस आँसू-भरी आँखों से वैसे ही देखा करती है जैसे छुरी के नीचे कबूतरी। मैं कैसे जानूँ…"

"अबे, तो एक दिन पूछ देख !"

"लेकिन माई, बाबूजी…"

"एक बात तू समझ ले। माई, बाबूजी के चक्कर में अगर पड़ा तो यह नहीं होगा। रीति-रिवाज और संस्कार को बूढ़े जान के पीछे रखते हैं। उम्र-भर की कमाई इज्जत-आबरू को वे प्राणों से वैसे ही चिपकाए रहते हैं, जैसे मरे बच्चे को बंदरिया। समझा ? तू उनके चक्कर में न पड़। जवान आदमी है। अबे, तुझे डर काहे का ? फिर मैं जो हूँ तेरी पीठ पर। देखेंगे कि तेरे खिलाफ जाकर कौन क्या कर लेता है। हिम्मत चाहिए, बस हिम्मत। हिम्मत के आगे दुनिया झुक जाती है।"

"अच्छा, तो तुम कब आओगे ? तुम जरा माई, बाबूजी को समझाते। वे बड़ी जल्दी मचाए हुए हैं।"

"बस, चार-पाँच दिन में। खेत कटने-भर की देर है। मैं सब कर लूँगा। बस तू अपनी भाभी को समझा ले। चल तुझे खेत दिखाऊँ। उधर से ही गंगा मैया में गोता लगाकर लौटेंगे।"

तेरह

•

कितने ही मेहमान आ-आकर जब निराश होकर लौट गए, तो एक दिन सुबह, जब भाभी अपनी पूजा में तल्लीन थी, माँ ने गोपी को बुलाया और पिता के सामने ला खड़ा किया। पिता की मुख-मुद्रा अत्यधिक गम्भीर थी। गोपी सहसा समझ न सका कि आखिर क्या बात है।

पिता ने उसे और पास बुलाकर कहा, "बेटा, मेरी और अपनी माँ की अवस्था देख रहे हो न ?"

गोपी ने जैसे किसी आशंका से भरकर सिर हिला दिया।

"बेटा, अब हमारा कोई ठिकाना नहीं। आज किसी तरह कट गया, तो कल दूसरा दिन समझो। हमारे दिल में क्या-क्या अरमान थे, आज उन्हें याद करके भी हमारा कलेजा फट जाता है। खैर, भगवान् की जो इच्छा थी, पूरी हुई। लेकिन अब क्या तू चाहता है कि घर-गिरस्ती को इसी उजड़ी अवस्था में छोड़कर हम···" कहते-कहते उनका कंठ उमड़ती हुई पीड़ा के आवेग से रुद्ध हो गया।

माँ ने सिसकते हुए अपना मुंह आंचल से ढककर फेर लिया।

गोपी के दुखी हृदय के जख्मों के टाँके जैसे किसी ने निर्दयतापूर्वक पट-पट तोड़ दिए। उसकी आत्मा दर्द के मारे कराह उठी। वह अपने को और सम्भालने में असमर्थ होकर वहाँ से हटने लगा तो पिता ने भरे गले से टूटे हुए स्वर में कहा, "हमारे रहते ही अगर तू घर बसा लेता, तो कम-से-कम हम शान्ति से···"

गोपी आगे की बात न सुन सका। वह चौपाल में जाकर बिलख-बिलखकर रो पड़ा। ओह, उसे कोई क्यों नहीं समझ रहा है ? किसी

को अपनी बेटी के ब्याह की फिक्र है तो किसी को उसके कुल के नाम-निशान की फिक्र है। माँ-बाप को उजड़ा घर बसाने की फिक्र है। लेकिन उसके चोट खाए दिल की क्यों किसी को फिक्र नहीं है?

यह सोच-सोचकर वह बार-बार झुंझलाया और उसने झुंझला-झुंझलाकर इसे बार-बार सोचा। आखिर वह एक नतीजे पर पहुँच गया। उसने दृढ़ता के साथ समाज की ओर से, दुनिया की ओर से आँखें मूँदकर उत्तेजना की स्थिति में निश्चय किया कि वह घर बसाएगा, जरूर बसाएगा, लेकिन इस तरह बसाएगा कि उसके हृदय की चोटों पर मरहम लग जाए, उसकी विधवा भाभी के जलते जीवन पर शीतल जल की छींटें पड़ जाएँ।

दूसरे दिन शाम को जब माँ बाप के पैताने बैठकर उनके पैर दबा रही थी, गोपी पूजा-घर में जाकर धक-धक करता हृदय लिये भाभी के पीछे खड़ा हो गया। भाभी पूजा में तल्लीन थी। रामायण का पाठ चल रहा था"'। "यहि तन सती भेंट अब नाहीं'''"। भाभी इसी पंक्ति को बार-बार भरे गले से दुहरा रही थी। आँखों से टप-टप आँसू चू रहे थे।

गोपी का हृदय करुणा से भर गया। उसकी आँखों से भी आँसू की धारा बह चली।

आखिर आँचल से आँखें सुखाकर, भाभी ने पूजा समाप्त कर ठाकुर के चरणों पर सिर नवाया। फिर चरणामृत पान कर उठी तो सामने देवर को एक विचित्र अवस्था में खड़ा देखकर पहले तो उसकी आँखें फैल गईं, फिर दूसरे क्षण पलकें झपकने लगी। जेल से लौटने के बाद गोपी एक बार भी भाभी से आँखें न मिला सका था, एकान्त में मिलने की बात तो दूर रही। भाभी एक बार गोपी की ओर चकित हिरनी की तरह देखकर बगल से जाने लगी तो गोपी ने प्राणों का सारा साहस बटोरकर अपना काँपता हुआ हाथ उसकी ओर बढ़ाया कि भाभी के मुँह से जैसे एक चीख निकल गई, "बाबू!"

गोपी का चेहरा तमतमा उठा। आवेश में जलता हुआ वह काँपते स्वर में बोला, "भाभी, अब मुझसे यह सब नहीं देखा जाता !"

भाभी अपने देवर को खूब जानती थी। उसकी एक ही बात, एक ही हरकत से वह उसके मर्म की सारी बातें जान गई। उसके चेहरे पर दुख की जो छाँई जमी हुई थी, उस पर खुशी का एक हल्का रंग आया और चला गया। उसकी आँखों की वीरानी और विवशता पर खुशी की एक किरण फूटी और अदृश्य हो गई। वह रुदन-भरे स्वर में बोली, "मेरे भाग्य में यही लिखा था, बाबू !" और रुदन के उमड़ते आवेग को रोकने के लिए उसने होंठों को दाँतों से भींच लिया।

"मैं भाग्य-वाग्य की बात तो नहीं जानता भाभी। मैं तो सिर्फ अपने दुःख और तुम्हारे दुःख की बात जानता हूँ। क्या हम दोनों मिलकर यह दुखी जीवन साथ-साथ नहीं काट सकते ? उजड़े हुए दो दिलों के मिलने पर क्या कोई नई दुनिया नहीं बस सकती ?" कहकर गोपी ने भरी आँखों में आग्रहपूर्ण निवेदन लाकर भाभी की ओर देखा।

भाभी ने एक ठण्डी साँस ली, दूसरे क्षण उसका चेहरा एक आशा और निराशा की द्वन्द्व-भरी करुण मुस्कान से विचित्र-सा हो गया। बोली, "ऐसा कभी नहीं हुआ''बाबू, ऐसा भी क्या''"

"ऐसा कभी नहीं हुआ, इसलिए आगे भी कभी नहीं होगा, यह बात मैं नहीं मानता। भाभी, मैं तो बस यही जानता हूँ और खूब सोच-समझकर देख भी लिया है कि इसके सिवा हमारे-तुम्हारे लिए कोई दूसरी राह नहीं। मैं तुम्हारी इस अवस्था के रहते अपने जीवन में एक क्षण को भी चैन से न रह पाऊँगा।" गोपी ने सीधे दिल की बात कहकर आँखें नीची कर लीं।

उसके हृदय की तड़पती सचाई को भाभी न समझ पाई थी, यह बात नहीं। देवर के हार्दिक स्नेह से वह सदा दबी रही है; उसी का सहारा लेकर वह आज भी एक असम्भव को उसी तरह गले लगाए हुए है, जैसे बिच्छी अपने पेट में बच्चों को पालती है। बिच्छी के प्राण

उसके बच्चे ले लेते हैं, यही सोचकर वह उनसे अपना गला ता नहीं छुड़ा लेती। भाभी के प्राण भी ऐसे ही निकल जाएँगे, वह जानती है। फिर भी उस असम्भव को अपने मन से एक क्षण को भी वह अलग कहाँ कर पाई है ? आज के इस अवसर का उसे मुद्दतों से इन्तजार था, उसने बहुत बार यह भी सोचा था कि ऐसे अवसर पर वह क्या कहेगी। लेकिन अब अवसर सचमुच उसके सामने आ गया, तो उसे लगा कि मन की बात उसके होंठों पर आयी नहीं कि देवर के सामने वह छोटी हो जाएगी। इस अवस्था में उसे लगा कि उस बात को बरबस दबाना ही पड़ेगा। उसकी विवशता देवर को भी मालूम है, उसे यह भी मालूम है कि भाभी अपने प्यारे देवर के हार्दिक स्नेह, सच्ची महानुभूति का भार सहन कर सकने में आज कितनी असमर्थ है, वह यह भी जानता है कि उसके किये ही कुछ हो सकता है। भला भाभी के लिए वैसे देवर का निवेदन ठुकरा देना, अपने और उसके अब तक चले आये स्नेह-सूत्र में बँधे सम्बन्ध को तोड देना कैसे सम्भव है ? इतना सब जानकर भी भाभी के मुँह से कुछ निकालकर उसे वह छोटी क्यों बनाना चाहता है ?

असमंजस में पडी-सी भाभी बोली, "हमारा समाज, हमारी बिरादरी, हमारे माँ-बाप ऐसा कभी न होने देंगे बाबू !"

"भाभी, इन सबको तुम मेरे ऊपर छोड दो, मैं तो तुम से यही जानना चाहता हूँ कि जिस राह पर चलना मैंने तय कर लिया है, उस पर तुम भी मेरे साथ-साथ चल सकोगी न ?" कहकर गोपी ने भाभी की ओर ऐसे आँखों से कलेजा निकालकर देखा, जैसे उसके जवाब पर ही उसका जीवन-मरण निर्भर हो।

भाभी के होंठो में कम्पन हुआ। मन की बात होंठो पर आकर उबलने लगी। लेकिन फिर भी, लाख साहस बटोरने के बाद भी भाभी के मुँह से कुछ निकल न सका। उसके हृदय का द्वन्द्व मुँह तक आयी बात को भी जैसे गट-से पी गया। हृदय की तूफानी धड़कन पर ही

कावू पाने के लिए उसने अपना तमतमाया, काँपता मुँह नीचे कर लिया, और गोपी को मानो उत्तर मिल गया और वह झपटकर बाहर हो गया।

भाभी हृदय का उमड़ता आवेग निकालने को ठाकुर के चरणों में गिरकर विह्वल होकर रो पड़ी। भगवान्, भगवान्, क्या सच ही···

गोपी माँ-बाप के सामने जाकर खड़ा हो गया। बाप ने उसकी ओर देखकर पूछा, "दाना-मिसना अब कितना रह गया बेटा?"

"आज खतम हो गया बाबूजी!"

"अच्छा, तो जा हाथ-मुँह धो ले। भाभी ने रोटी सेंक ली हो तो गरम-गरम खा ले। दिन-भर का थका-हारा है।" फिर अपनी औरत की ओर देखकर कहा, "फसल दाँ मिसकर घर आ जाती है तो किसान की साल-भर की मेहनत सुफल हो जाती है। काम से जरा फुरसत पा उस दिन वह आराम की एक साँस लेता है।"

"बाबूजी!"

बाप ने मुड़कर फिर गोपी की ओर देखकर कहा, "क्या कहता है? कोई बात है?"

"हाँ।"

"तो कहो।"

"बाबूजी, अब मैं घर बसाऊँगा।"···

"यह तो बड़ी खुशी की बात है बेटा! हम तो तुम्हारी इसी बात का, जब से तुम आए, इन्तजार कर रहे थे। कल ही लो। तय करते कितनी देर लगेगी। कितने आ-आकर चले गए। अरे हाँ, मटरू इधर महीनों से नहीं आया। कह गया था, 'मैं ही गोपी का व्याह कराऊँगा।' भूल गया होगा। दाँने मिसने से आजकल किस किसान को कहाँ किसी बात की फिक्र रह जाती है! खैर, अब सब ठीक हो जाएगा बेटा, तुम

कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं।" फिर अपनी औरत की ओर मुड़कर खुशी से पागल हुए-से बोले, "खेत का धन कट-कुटकर जब घर आ जाता है तो किसान का ध्यान खेत से हटकर घर में आ जाता है। क्यों, गोपी की माँ ?"

माँ खुशी में फूली हुई अपने आँचल से अपने लाडले के मुँह पर जमी धूल-गर्द को पोंछती हुई बोली, "सो तो है ही, गोपी के बाबूजी, घर भरता है तो पेट भरता है, और जब पेट भरता है तो···" और वह जोर से खी-खीकर हँस पड़ी तो बूढ़े भी हो-हो कर उठे।

"लेकिन बाबू जी······" सिर झुकाए, हाथों को उलझाता गोपी बोला।

"तुम फिक्र न करो, बेटा। सब ठीक हो जाएगा। बेटा, मेरे कुल से सम्बन्ध करने का लोभ किसमें नहीं ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तू लायक बनकर रहेगा तो सब बिगड़ी बन जाएगी। वही देखने को तो अभी तक मैं जिन्दा हूँ। क्यों, गोपी की माँ ?"

"और नहीं तो क्या ? मेरा लाल सलामत रहे, तो फिर घर झम-झम भर जाएगा। हे भगवान्···" और बूढ़ी ने दोनों हाथ माथे से लगा लिए।

"मगर बाबूजी," सूखते गले के नीचे थूक उतारता गोपी बोला, "मैं···मैं···मुझे···मुझे अपना घर बसाने के लिए किसी दूसरी लड़की को नहीं लाना है। मैंने तय किया है कि भाभी···"

"क्या ?" क्रोध में काँपते पिता ऐसे चीख पड़े कि उनकी आँखें निकल आईं। माँ जैसे सहसा जमकर पत्थर हो गई। उसका मुँह और आँखें सीमा से अधिक फैल गईं। पिता ने गरजकर कहा, "मेरे जीते-जी अगर तूने यह बात फिर मुँह से निकाली, तो···तो···तू सुन ले, वह मेरे घर की देवी हो सकती है, लेकिन बहू, बहू···वह मानिक की ही रहेगी ! तूने अगर···ओह, मानिक की माँ !" उनका क्रोध में उठा हुआ कमर से ऊपर का शरीर काँपता हुआ कटे पेड़ की तरह धम से गिर

पड़ा और वह दोनों ठेहुनों पर दोनों हाथ रखते जोर से कराह उठे। माँ जलती आँखों से गोपी की ओर देखती, गुस्से से काँपती, उनके ठेहुनों को सहलाने की व्यर्थ कोशिश करने लगी।

"बूढ़े की कड़क सुनकर कई आदमी लपक आए। भाभी दरवाजे पर आकर ओंठ चबाने लगी।

गोपी हाथ से सिर पकड़े वहाँ से हट गया।

दुनिया समझती है कि बेटा और विधवा बहू माँ-बाप की आँखों के तारे हैं। बूढ़ा कैसे दूसरों से कहता है, मेरी बहू मेरे घर की लक्ष्मी है। बेवा हुई तो क्या, वह मेरी जान के पीछे है। उसकी सेवाओं का बदला क्या इस जीवन में मैं चुका सकता हूँ। पिछले जनम की वह मेरी बेटी है, अगले जनम में मैं उसकी बेटी बनकर उसकी सेवा करूँगा। तभी ऋण से उऋण हो जाऊँगा!' और माँ? 'इसे मैं आँखों की पुतरी की तरह रखूँगी। मेरे लिए तो यह मेरा मानिक ही है। बड़ी बहू एक दिन घर की मालिकन बनेगी। उसे तुलसी की तरह सब अपने सिर पर रखेंगे!' लेकिन कोई भोले गोपी से तो पूछे कि वे उनके लिए क्या हैं? ओह, उनकी आँखों की लपटों ने क्यों नहीं उसे वहीं जलाकर भसम कर दिया, क्यों नहीं बढ़कर भाभी को जला दिया, क्यों नहीं फैलकर सारे घर को जला दिया? सब झंझट ही साफ हो जाता। फिर बूढ़ा-बूढ़ी बैठकर मसान जलाते।

गोपी का सारा तन-मन फुँक रहा था। उसके जी में आता था कि अभी सबको नोंच-नाचकर रख दे और भाभी का हाथ पकड़े घर से निकल जाए। कई बार चौपाल से घर में जाने को उसके पैर बढ़े और पीछे हटे। कई बार उसने दाँत भींच-भींचकर कुछ सोचा, लेकिन इतनी हिम्मत उसमें कहाँ थी कि माँ-बाप की छाती पर पैर रखकर वह चला जाए? उसने कब सोचा था कि आखिर उसे ऐसा भी करना

पड़ेगा? वह तो सोचता था कि माँ-बाप का अकेला लाड़ला जैसे ही मुँह खोलेगा······

वह विवश क्रोध में पागल-सा ही बाहर निकल पड़ा। उसे भय लगा कि सचमुच वह कहीं कुछ कर बैठा तो?

उसकी अब तक बँधी आशा टूट गई थी। इतने दिनों अपने हृदय से लड़कर उसने उससे जो समझौता किया था, वह व्यर्थ सिद्ध हो गया। पिता की एक बात ने ही उसके अब तक के खड़े किये महलों को ठोकर मारकर गिरा दिया। एक नयी राह पर चलकर अपनी मंजिल के करीब वह पहुँचा ही था कि उसकी टाँगें तोड़ दी गईं। आज वह जितना दुखी था, उससे कहीं अधिक क्षुब्ध था अपने माँ-बाप पर। एक चली आई खोखली रीति, समाज के एक थोथे रिवाज, सड़ी-गली एक रूढ़ि, कुल की एक झूठी मर्यादा के दम्भी-पुजारी माँ-बाप आज अपने खूनी जबड़े में एक फूल-सी सुकुमार, गाय-सी निरीह, रोगी-सी दुर्बल, निहत्थी-सी अपनी रक्षा करने में बेबस, कैदी-सी गुलाम, सुबह के आखिरी तारे-सी अकेली युवती को दबाकर चबा डालना चाहते हैं। ओह! इन्हीं आँखों से कैसे वह निर्दयता का यह क्रूर दृश्य देखता रहेगा?

वह बौराया-सा कटे हुए खेतों और खलिहानों में परेशान दिमाग और क्षुब्ध हृदय लिये बड़ी रात तक घूमता रहा। उसे इस वक्त सिर्फ एक मटरू ही ऐसा आदमी दिखाई देता था, जिसकी गोद में सिर डालकर वह जरा शान्ति का अनुभव करता। शायद वही अब कुछ करे। भाभी की ओर से तो उसे तसल्ली हो ही गई। उसके जी में आया, अभी दौड़कर मटरू के पास पहुँच जाए, लेकिन घर की सोचकर कि जाने आज भाभी पर क्या बीते, वह वापस लौट पड़ा।

वह खेतों-ही-खेतों से घर की ओर चला, चारों ओर सन्नाटा छाया था; काली रात ने सब-कुछ को ढँक लिया था।

चोर की तरह वह घर के दालान से खटोला निकालने को घुमा तो

माँ की कड़कती हुई आवाज सुनकर चौखट पर ठिठक गया।

माँ चोट खाई बाघिन की तरह गरज रही थी, "कलमुँही, तुझे शर्म न आई देवर पर डोरा डालते ? मैं तो समझती थी कि सावित्री-सी सती है बहू। क्या-क्या पाखंड रचे थे, पूजा-पाठ, ध्यान-भक्ति, सेवा-सुश्रूसा ! मुझे क्या मालूम था कि इस पाखण्ड के आड़े तू मेरी नाक काटने की तैयारी कर रही है। चुड़ैल, तुझे लाज न आई यह सब पाप-करम करते ? यही सब करना था तो तू क्यों न निकल गई किसी पापी के साथ ! तू काला मुँह करती, मेरा बेटा तो बच जाता तेरे जाल से ! कितने ही आए रिश्ता लेकर और लौट गए। हम कहें क्या बात है कि वह किसी के कान नहीं देता ! हमें क्या मालूम था कि भीतर-ही-भीतर तू बेशर्मी का नाटक रच रही है ! कुशल है कि बूढ़ा अपंग हो गया है, नहीं तो तुझे आज बोटी-बोटी काटकर रख देता। तू चखती मजा अपनी करनी का ! जा कहीं डूब मर, कुलबोरिन···"

गोपी और ज्यादा न सुन सका। उसका दिमाग फटने लगा। उसे लगा कि अगर वह एक क्षण भी वहाँ और खड़ा रह गया तो कुछ ऐसा भीषण काम कर डालेगा जिसका फल अत्यन्त ही भयंकर होगा। वह लड़खड़ाता हुआ-सा भागकर घर के पास के कुएँ की जगत पर दोनों हाथों से फटता सिर दबाए पड़ गया। उसमें एक हाहाकार मचा था।

भाभी ने आज तक ऐसी बातें न सुनी थीं। आज जीवन के गुजरे हुए दिन उसकी आँखों के सामने वैसे ही नाच उठे जैसे किसी मरने वाले के सामने। माँ-बाप, भाई-बहन का लाड़, मानिक का प्यार, सास-ससुर-देवर का स्नेह ! उधर विधवा होने के बाद जरूर कुछ चिड़-चिड़ा होकर वह सास से उलझी थी। लेकिन इस तरह की बात कोई कहे, इसका मौका उसने किसी को कभी न दिया था। आज भी उसकी

कोई गलती न थी। फिर सास जो ऐसी बातें बिना कुछ जाने-बूझे, सोचे-समझे उसे सुनाने लगी, तो उसके मन की क्या हालत हुई, यह सहज ही समझा जा सकता है। उसका घायल हृदय हाहाकार कर उठा। इस अचानक, बेकारण हमले ने वह ऐसे सुन्न हो गई, कि न कुछ कह सकी, न रो सकी, न सिसक सकी, न एक आह ही भर सकी। दिमाग भन्ना रहा था, चेतना पर एक असह्य पीड़ा का खामोश नशा-सा छा गया था, अंग-अंग जैसे निर्जीव हो रहा था। जहाँ होश और बेहोशी एक-दूसरे से मिलते हैं, ऐसी स्थिति में वह बुत बनी बैठी रह गई। सास बड़बड़ाती रही, बड़बड़ाती रही। लेकिन उसे अब जैसे कुछ सुनाई न दे रहा था। उसके सुन्न दिल-दिमाग की गहराइयों में सास की वह एक ही बात गूँज रही थी, "जा कहीं डूब मर कुलबोरिन ! जा···"

कभी पहले भी मर जाने की बात उसके मन में उठी थी, लेकिन एक आशा, एक सहारे ने उसके हाथ थाम लिए थे। वह आशा असम्भव ही थी, तो क्या, फिर भी आशा थी। लेकिन आज ? आज वह भी टूट गई। जिस तारे पर नजर लगाए वह आज तक जीवित थी, वही टूटकर गिर पड़ा। अब···अब सिर्फ अन्धकार है—अन्धकार, निविड़, कठोर, भयंकर।

बड़बड़ाते-ही-बड़बड़ाते सास खाट पर पड़ गई और बड़बड़ाते-ही-बड़बड़ाते थककर सो गई। उसे खाने-पीने, बूढ़े के दवा-दारू, बेटे की खोज-खबर, यहाँ तक कि घर का बाहरी दरवाजा बन्द करने की भी गुस्से के मारे सुधि न रही।

अन्धेरी रात पल-पल गाढ़ी होती गई। घर का सन्नाटा गहरा होता गया। वातावरण भाँय-भाँय करने लगा। निर्जनता को भी जैसे नींद आ गई, साँसें भी जैसे थम गई हों।

अन्धकारपूर्ण अतल में डूबी हुई भाभी की चेतना में एक हरकत हुई। नशे में बुत-सी वह उठ खड़ी हुई। कोई शब्द नहीं, कोई खयाल नहीं। उसके बेहोश पैर उठे। यह चौखट है, जिस पर भाभी ने इस—

में आने के बाद कभी पैर न रखा था, लेकिन आज वह वह नहीं है। आज एक लाश है, जो बाहर जा रही है। और उसे तो इस क्षण यह भी ज्ञान नहीं कि वह क्या कर रही है। एक बेहोशी की चेतना है, जो उसे लिये जा रही है।

यह कुएं की जगत् की सीढ़ियां हैं। दो कदम और······और फिर···

"कौन है ?" फैली आंखों से देखता अभी तक जगा पड़ा गोपी पुकार उठा।

बेहोशी को अचानक होश आ गया। कांपती भाभी कुएं की दाँती की ओर दौड़ी कि गोपी ने उसे पकड़ लिया। "कौन है ?···भाभी तुम···!" भाभी बेहोशी हो उसकी बांहों में आ रही। यही होने वाला था, यही होने वाला था ! गोपी की बुज़दिली का नतीजा यही होने वाला था ! अब ? समय नहीं। जल्दी, जल्दी ! सोचने का समय कहाँ, मूर्ख ?

और गोपी भाभी को अपनी बांहों में उठाए भाग चला। अन्धकार ! कोई रास्ता नहीं, लेकिन गोपी भागा जा रहा है। रास्ते देखने-समझने का यह समय नहीं। इस वक्त तो भाभी को इन चांडालों से कहीं दूर ले जाना है। वह बस यही जानता है, यही !

चौदह

पौ फटने के पहले ही गोपी लौटकर कुएं की जगत् पर पड़ रहा। अभी वह अपने को स्वस्थ करने की कोशिश कर ही रहा था कि मां के

चीखने की आवाज उसके कानों में पड़ी, "हाय राम ! बड़ी बहू घर में नहीं है..." लेकिन वह आँखें मूँदे ऐसे पड़ा रहा, जैसे नींद में बेखबर हो।

धीरे-धीरे मुहल्ले के औरत-मर्द उसके दरवाजे पर जमा हो गए। गोपी को जगाया गया। वह एक हत्यारे की तरह चुप बना रहा। लोगों ने बहुत सोच-समझकर भीड़ हटाई और हिदायत की कि सब चुप रहें, किसी को कानोंकान खबर न हो, वरना बदनामी जो होगी, सो तो होगी ही, ऊपर से कहीं लेने के देने न पड़ जाएँ।

लेकिन इस तरह की वारदातें छिपाए कहीं छिपती हैं ? बहुतों को इस तरह की संगीन खबरें फैलाने में एक अजीब तरह का मजा मिलता है। सो घड़ी-आध घड़ी बीतते-बीतते दारोगा आ धमका।

दारोगा चला गया। गोपी चौपाल में अकेला बैठा सोच में डूबा था। माँ की रुलाई की आवाज सुनकर उसका पारा चढ़ जाता था। उसकी समझ में न आता था कि वह क्यों रो रही है ? उसी ने तो उसे डूब मरने के लिए कहा था। अब यह ढोंग क्यों दिखा रही है ? उसके जी में आता था कि जाकर उसे खूब आड़े हाथों ले और कहे कि अब तो नाक बच गई ! खुशी मनाओ ! अपने कुल की मर्यादा का ढोल पीटो ! वह अपने बाप से भी झगड़ना चाहता था। अब तो इज्जत बढ़ गई ? कलेजा ठंडा हुआ ? हत्यारो ! उस मासूम की हत्या का पाप ताजिन्दगी तुम्हारे सिर पर रहेगा ! तुम अपनी बिरादरी को हार बनाकर गले में पहने रहो, रीति-रिवाज की खूब माला जपो !

लेकिन रात की घटना उसके दिल-दिमाग पर इतनी और इस तरह छाई थी, कि वह उठ न सका। सोचने-विचारने पर उसे लगता था कि वह भी माँ-बाप से किसी प्रकार भी कम अपराधी नहीं। उसका भी उनमें उतना ही हाथ था, जितना उनका। अगर हिम्मत करके वह माँ-बाप का मुकाबिला कर सकता, सरे-आम भाभी का हाथ पकड़ लेता, तो भाभी के लिए ऐसा करने की नौबत क्यों आती ? यही खयाल उसे

बेतरह दबाए हुए था। उसकी जबान बन्द थी।

आज वही बात फिर उसके मन में बार-बार उठ रही थी कि सच ही उसके समाज की विधवा लकड़ी का वह कुन्दा है, जिसमें उसके पति की चिता की आग एक बार जो लगा दी जाती है, तो वह जलती रहती है, तब तक जलती है, जब तक वह जलकर राख न हो जाए, और उसके राख हो जाने के पहले उसे बुझाने का किसी को अधिकार नहीं। क्या राख हो जाने के पहले उसने भाभी को बचा लेने की जो कोशिश की, वह उसकी अनधिकार चेष्टा थी? क्या उसकी सच्ची, सहानुभूतिपूर्ण कोशिशों का यही अन्त होना था? आखिर इसमें बाकी ही क्या रह गया था? भाभी के राख हो जाने में कसर ही कितनी थी? यह तो संयोग ही था न, जो वह बच गई। वरना, वरना······और वह फूट-फूटकर रो पड़ा। ओह! यह क्या होने वाला था! हे भगवान् तेरा लाख-लाख शुक्र, जो······

और वे सवाल फिर-फिर उसके दिमाग में उठ पड़ते—ऐसा क्यों हुआ? क्यों, क्यों?

और उसके ही अन्तर की आवाज उसके जवाब में गूंजने लगती, 'हाँ, तुम सच्चे थे, तुम्हारा दिल भी सच्चा था, तुमने कोशिश भी की जरूर। लेकिन उस कोशिश को सफलता की मंजिल तक पहुँचाने के लिए जिस साहस की जरूरत थी, वह पूरा-पूरा तुममें न था। इस साहस के अभाव ने ही भाभी को राख हो जाने के लिए मजबूर कर दिया था। साहसविहीन इस तरह की कोशिशों का यही अन्त होता है। ये आग को और भी भड़का देती हैं। ये तत्क्षण जलाकर राख कर देती हैं। मूर्ख, अब भी समझ, अब भी सँभल! यह बच्चों का खेल नहीं; यह भावुकता के व्यर्थ के जोश के वश का रोग नहीं! यह आग में फाँदकर आग बुझाना है, यह जीवन पर खेलकर जीवन बचाना है, यह युगों-युगों से लाखों विधवाओं का खून पीकर बलिष्ठ हुए रीति-रिवाज के भयंकर राक्षस से अकेले लड़कर उसे पछाड़ना है,

यह बीहड़ जंगल से एक नई राह निकालनी है; कोई ठट्ठा नहीं, कोई खेल नहीं !

ग्रौर जीवन में कभी भी हार न मानने वाले गोपी को लगा कि जैसे उसके साहस ग्रौर बल को यह दूसरी ललकार है, जिसके सामने ग्रगर उसने सिर झुका दिया तो उसकी भाभी जलकर राख हो जाएगी। पहली ललकार जोरू की थी ग्रौर ग्राज यह दूसरी है। ग्रौर गोपी को महसूस हुग्रा कि ग्राज फिर वही खून उसकी नसों में दौड़ने लगा है, जिसकी ताकत के सामने वह किसी को कुछ न समझता था।

कुएँ में काँटा डाला गया; ताल-पोखर को छाना गया। ग्रौर जब कहीं कुछ पता न चला, तो तरह-तरह की ग्रफवाहें हवा में उड़ाई गईं, तरह-तरह की कहानियाँ रची गईं। ग्रौरतों ने भाभी में कितने ही कुल-च्छन निकाल डाले, बूढ़ों ने जमाने को कोस-कोस मारा, यारों ने चर्चा चला-चला खूब मजे लूटे। लेकिन किसी में इतनी हिम्मत न थी कि गोपी के सामने जबान खोलता। फिर ग्रपनी चादर के छेद को छिपाकर दूसरे की चादर के छेद में पैर डालकर कहाँ तक फाड़ते ? ढेला गिरने से पानी की सतह में जो हलचल मचती है, वह कितनी देर ठहरती है ?

दिन बीतते गए। दुनिया पूर्ववत् चलती गई। ग्रौर एक रात जब गाँव में सोता पड़ गया था, गोपी के दरवाजे पर एक भारी-भरकम ग्रौजी धम से बज उठी।

बूढ़े ने, जिसकी नींद ग्राजकल पहले की बहू वाली सेवा-शुश्रूषा न पाकर हिरण हो गई थी, यों ही मुँदी ग्राँखें खोलकर टोका, "कौन ?"

ग्रागन्तुक धीमे से हँसा। फिर बूढ़े की ग्रोर बढ़ता बोला, "जाग रहे हो बाबूजी ?"

"कौन ? मटरू है क्या ? ग्ररे बेटा, मेरी नींद तो उसी दिन से उड़

गई, जिस दिन बहू चली गई। अब तो लाश ढो रहा हूँ। कौन उसके बराबर अब हमारी सेवा करेगा! बूढ़ी तो ज़रा देर में झल्लाकर भाग खड़ी होती है। अब तो भगवान् उठा लें, यही मनाता रहता हूँ। आओ, बैठो। बहुत दिन पर आए! क्या-क्या हो गया इसी बीच! सोचा था, अब दिन लौटेंगे, लेकिन करम में तो जाने अभी क्या-क्या भोगना बदा है।"

दीवार से गोजी टिकाकर, पैताने बैठता मटरू बोला, "सब ठीक हो जाएगा बाबूजी, आप चिन्ता न करें। इस घर को बसाने के लिए ही तो इतने दिनों रात-दिन एक किये रहा। सोचता था कि जब तक काम न बन जाए, कौन मुंह लेकर आपके यहाँ आऊँ। जबान दी थी, तो उसे पूरा किये बिना चैन कहाँ! मटरू की जिन्दगी इसी एक बात से तो पैमाल रहती है। अपने स्वभाव को क्या करूँ? गंगा मैया के पानी, मिट्टी और हवा के सिवा जिन्दगी का कोई सुख न जाना। हाँ, हक और न्याय के सामने किसी को मैंने कभी कुछ न समझा। कई बार मुंह की खाकर भी इन जमींदारों की ऐंठ नहीं जाती। मुंह का लगा हुआ आसानी से नहीं छूटता, बाबूजी। पुश्तों हराम का दीयर से बटोरा है। अब नहीं मिलता तो दांत किटकिटाते हैं। सुना है, कानूनगो को पड़ताल करने का हुक्म आया है। अब तो चारों ओर पानी-ही-पानी है, वह काहे की पड़ताल करेगा? बात अगले साल पर गयी। तब तक हमें भी तैयारी करने का मौका मिल गया है। जान दे देंगे बाबूजी, लेकिन जमींदारों का वहाँ पांव न जमने देंगे। सालों यह लड़ाई चलेगी। गंगा मैया की कृपा से हमारी जीत होगी। हक और न्याय हमारे साथ हैं। झूठ, फरेब, धांधली, जोर-जुलुम की गाड़ी बहुत दिनों तक नहीं चलती। अब मटरू अकेला नहीं, दीयर और तीरवाही के हजारों किसान उसके साथ हैं। अपनी प्यारी धरती पर जान देने वालों से उनकी धरती छीन लेने की ताकत किसमें है?···इन्हीं झंझटों में फंसा रहा बाबूजी, नहीं कभी का सब ठीक हो गया होता। इधर गंगा मैया भी फूल उठी हैं। पांच

दिन पहले ही तो अपनी झोंपड़ी उस पार ले गया हूँ। इस पार तो कुत्तों की तरह जमींदार मेरी महक सूँघते रहते हैं। अब तुम कहो, यहाँ का समाचार बहुत दिनों से नहीं मिला।"

"क्या कहूँ बेटा, घर में एक करने-धरने वाली थी, वह भी···"

"वह तो सुन चुका हूँ, बाबूजी···"

"क्या बताऊँ मटरू बेटा, ऐसी लायक बहू थी कि उसकी याद आती है तो कलेजा फटने लगता है। अब मैं नहीं जीऊँगा।" कहते-कहते वह रो पड़े।

"बाबूजी, तुम इस तरह अपना जी हलका न करो। तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ बाबूजी, कि मैं गोपी को ऐसी बहू ला दूँगा जो अकेले ही आपकी बड़ी बहू और छोटी बहू दोनों की जगह भर देगी। आप चिन्ता न करें।"

"लेकिन गोपी तैयार तो हो बेटा, वह तो हमसे बहुत नाराज है। बोलता भी नहीं। अब तुमसे क्या छिपाऊँ, वह अपनी भाभी के साथ ही घर बसाना चाहता था। यह भला कैसे हो सकता था! जाने उस दिन पगली बूढ़ी ने क्या-क्या बहू को कह डाला। वह घर से निकल गई। इधर वह हमसे नाराज हो घुलता जा रहा है। हमें क्या मालूम था बेटा, कि इस तरह उसका दिल लगा था। मालूम होता तो हम काहे को कुछ कहते? माँ-बाप के लिए क्या बेटे से बढ़कर बिरादरी है? बहू भी दो-चार होते तो एक बात होती। यहाँ तो उसी एक के सहारे हमारी जिन्दगी है। बिरादरी वाले क्या हमें खाना दे देंगे? लेकिन हमें क्या मालूम था? अब कितना पछतावा हो रहा है। अरे, मेरी तो बेटी ही निकल गई। उसके बराबर कोई मेरी सेवा क्या करेगा? लेकिन अब किया क्या जा सकता है बेटा? तुम उसे समझाओ। अब तो होश सँभाले।"

"समझाऊँगा बाबूजी, मेरी बात वह नहीं टाल सकता। मुझे अपने मानिक भैया की तरह वह मानता है। तुम चिन्ता न करो, सब ठीक हो

जाएगा। कहाँ पड़ा है वह ?" उठते हुए मटरू ने कहा।

"अरे बेटा, जरा देर और बैठ। मुझे यह तो बताया ही नहीं कि कहाँ..."

मटरू धीरे से हँसकर बोला, "अपने ही घर की लड़की है बाबूजी। यों समझ लो कि मेरी छोटी साली ही है। पण्डित से जँचवा लिया है। गनना-वनना सब ठीक है। रूप-रंग में बिलकुल गोपी की भाभी ही की तरह है। जर्रा-बराबर भी फर्क नहीं। गुण में भी उसी की तरह। सेवा-टहल तो इतना करती है बाबूजी, कि तुमसे क्या कहूँ। तुम देखना न। तुम तो समझोगे कि बड़ी बहू ही दूसरा रूप धारण करके आ गई। तुम भी क्या समझोगे कि मैं कैसा पारखी हूँ! जब से गोपी की भाभी को देखा था, गोपी के लायक कोई लड़की ही नजर पर न चढ़ती थी। उससे कम कैसे आती घर में ? वह तो संजोग कहो कि बिलकुल वैसी ही लड़की घर में ही निकल आई। वे लोग दुआह से उसकी शादी करने को तैयार ही न होते थे। सच भी है, वैसी रूपवती, गुणवती लड़की की शादी कोई दुआह से कैसे करे ? वह तो मटरू की बात थी कि मान गए। मटरू की बात कोई नहीं टालता, बाबूजी। लेकिन हाँ, घर की हुई तो क्या ? मैंने उनसे साफ कह दिया है कि जो भी दर-दहेज वे माँगेंगे, देना पड़ेगा। सो बाबूजी, किसी बात का लिहाज न करना। जो माँगना हो, कह दो..."

"अरे, हमें उससे क्या मतलब है ! तू गोपी से ही यह सब तय कर लेना। हमें क्या बेटा ? जिसमें तुम सब खुश, उसमें हम खुश। घर बस जाए, बस यही भगवान् से मिनती है। अच्छा, तो जा सहन में गोपी पड़ा होगा। उससे बातें कर ले। और बेटा, जितना जल्द हो, इसे कर डाल। देर अब नहीं सही जाती। हे भगवान्..."

"सो तो सब तैयारी ही करके आया हूँ बाबू जी," कहकर मटरू उठा और गोजी में बँधी गठरी खोलकर बूढ़े के हाथ में थमाता हुआ बोला—"यह मिठाई, धोती और पाँच सौ रुपये तिलक के हैं..."

"हैं, हैं, अरे, इतनी जल्दी कैसे होगा यह सब। पर-पुरोहित, बर-बिरादरी..."

"सो तुम सब करते रहना बाबू जी! मेरा तो जानते हो, रात ही का मेहमान हूँ। फिर गंगा मैया उफनी हुई हैं। पार-वार का मामला है। कौन बार-बार आने-जाने का जोखिम उठाएगा। फिर तुम यह सब ले लोगे तो गोपी पर दवाव डालने की एक जगह भी निकल आएगी। मेरा काम कुछ आसान हो जाएगा। यों काम तो तुम्हारा ही है। अब गोपी को भी टीका लगा दूँ। जय गंगा जी!" और वह उठ पड़ा।

गोपी सहन में खटोले पर पड़ा खर्राटे ले रहा था। मटरू ने पहुँचकर एक ज़ोर की धौल जमाई और उसका हाथ पकड़, उठाकर बैठाता हुआ बोला, "क्यों बे, मैं तो तेरी शादी के चक्कर में इतनी रात को उफनती हुई नदी पार करके आया हूँ। और तू यहाँ खर्राटे ले रहा है? आने दे बहू को, फिर देखूँगा कि कैसे खर्राटे लेता है!"

सकपकाया हुआ गोपी उठकर खड़ा होता धीरे से बोला, "चौपाल में चलो मटरू भैया!"

"और यहाँ क्या हुआ है बे? ओ, शर्म आती होगी। अबे, तूने तो कुँआरों को भी मात कर दिया!"

गोपी उसका हाथ खींचकर अन्दर ले गया। उसके हाथ से गोजी लेकर दीवार से लगाकर, खड़ी करके वह बोला, "मेरी..."

"अभी चुप रह, मुझे अपना काम कर लेने दे।" कहकर उसने बाईं हथेली पर दाहिने हाथ का अँगूठा रगड़ा और कुछ मन्त्र-सा बड़बड़ाता हुआ गोपी के माथे पर तिलक-सा लगाने लगा, तो गोपी बोला, "इसे तूने कोई खेल समझ रखा है?"

मटरू सहसा हँसोड़ से गम्भीर हो उठा। बोला, "खेल तू कहता है? बहादुरों के लिए मुश्किल-से-मुश्किल काम भी खेल है और बुज़दिलों के

लिए आसान-से-आसान काम भी मुश्किल। तू यह बात किससे कह रहा है, कुछ खयाल है? मटरू ने अपनी जिन्दगी में किसी काम को कभी भी मुश्किल न समझा। उसने मुश्किलों से हमेशा ही खेला है और खेल-खेल में ही सर कर लिया है। तू इस तरह की बात फिर जवान पर न लाना। दुनिया में मुझे किसी बात से चिढ़ है, तो वह बुजदिली है और जिस दिन मैंने समझ लिया कि तू बुजदिल है, उसी दिन तुझे और तेरी भाभी को काटकर गंगा मैया की भेंट चढ़ा दूँगा! समझ लूँगा कि एक भाई था, मर गया, एक बहन थी, न रही।" उसका गला भर्रा गया और उसने सिर झुका लिया।

गोपी उसकी गोद में सिर डालकर सिसक पड़ा। मटरू उसकी पीठ सहलाते हुए बोला, "पागल, मेरे रहते तुझे कौनसी बात मुश्किल लगती है? उठ, मेरी बात सुन। वक्त ज्यादा नहीं है। रात-ही-रात मुझे वापस जाना है।" और उसने गोपी को उठा उसके गालों को थप-थपाते हुए कहा, "सिसवन वन के सामने मेरी नाव लगी रहती है। वहाँ तू कहेगा तो मेरी झोंपड़ी तक पहुँचा दिया जायगा। मैं अपने आदमियों से कह रखूँगा। तुझे कोई दिक्कत न होगी। मैंने बाबूजी को तिलक दे दिया है। कल पीली धोती पहनना। बिरादरी में मिठाई बँटवा देना और फिर शादी की तारीख की खबर मेरे आदमियों को दिलवा देना। सब बाकायदे हो। दूल्हा बनकर मेरे यहाँ आना। बारात-बारात भरसक न लाना, लाना, तो छोटी। गंगा मैया कोप में हैं। खैर, जैसा मुनासिब समझना, करना। मेरी बहन की शादी है। अपने को बेच देने में भी मुझे कोई उज्र न होगा। गंगा मैया फिर मेरी झोली भर देंगी। उसके दरबार में किसी चीज की कमी नहीं, समझा? मन में कभी कोई ऐसी बात न लाना। यह बात न भूलना कि तू मटरू का भाई है। ऐसा करना कि मटरू की इज्जत बढ़े। मटरू की इज्जत बहादुर ही बढ़ा सकता है...अच्छा, तो खयाल रखना मेरी बातों का। सिसवन वन। अब चलूँ!"

"मेरी भाभी कैसे है ?" प्यार से गद्गद गोपी बोल पड़ा।

मटरू हँसा, बोला, "अबे, अब भी वह तेरी भाभी ही है ? दुलहन क्यों नहीं कहता ? अच्छी है, बिलकुल अच्छी है। गगा मैया की हवा जहाँ तन को लगी कि तीनों ताप मिट जाते हैं। वह तो अब ऐसी हरी हो गई है कि देखे तो जिया लहरा उठे। इस बीच कभी मौका मिले तो आ जाना," कहकर उसने गोपी का माथा चूम लिया और उठ खड़ा हुआ।

गोपी ने उसके पाँव पकड़ लिए। मटरू बोला, "हाँ, अभी से सीख ले कि बड़े साले का आदर कैसे किया जाता है।"

"भैया !" गोपी ने शरमाकर सिर झुका लिया। मटरू ने उसे उठाकर अंक में भर लिया।

पन्द्रह



मुँह अँधेरे ही बिलरा सानी-पानी करने आया तो बूढ़े ने उसे बुलाकर कहा, "दौड़ा जाकर पुरोहित जी को बुला ला। कहना, साथ ही चले आएँ, देर न करें।"

"क्यों मालिक, कोई मेहमान आये हैं का ? छोटे मालिक का बियाह······"

"हाँ, हाँ रे, सब ठीक हो गया, तू जल्दी जाकर बुला तो ला।"

बिलरा चला तो उसके पाँवों में वह फुरती न थी, जो ऐसे खुशी के मौकों पर हुआ करती है। छोटी मालकिन जिस दिन लापता हो

थी, उसे बहुत दुःख हुआ था। गोपी के आ जाने के बाद उसे छोटी
लिकिन को देखने का मौका न मिला था। गोपी ही भूसा वगैरा
कालता था। उसके जी में कितनी बार आया था कि छोटे मालिक
वह अपने मन की बात कहे। कई बार अकेले में बात उसके मुँह
ी आई थी, और गोपी ने उसकी कुछ कहने की मंशा समझकर पूछा
ी था। लेकिन वह टाल गया था, उसे हिम्मत न पड़ी थी। छोटी
मालकिन औरत थी, उससे कह देना आसान था। लेकिन यह बात गोपी
के साथ न थी। कहीं गुस्सा होकर एकाध थप्पड़ जमा दिया तो? छत्री
का गुस्सा क्या होता है, इससे उसका कितनी ही बार पाला पड़ा था।
और आखिर जब छोटी मालिकिन के भाग जाने की बात उसे मालूम
हुई तो उसके मुँह से यही निकला था, "च...च...कैसे जालिम हैं ये
लोग! आखिर बेचारी को भगाकर ही दम लिया।"

उसे उस मासूम छोटी मालकिन की याद बहुत आती थी। बेचारी
जाने कहाँ, कैसे होगी, कौन जाने कहीं इनार-पोखर ही पकड़ लिया हो!
उसकी यह समवेदना, एक भोले-भाले दिल वाले की थी। आखिर छोटी
मालकिन से उसका नाता ही क्या था? फिर भी इसका जितना सच्चा
दुःख उसे हुआ था, शायद ही किसी को हुआ हो।

फिर कितनी जल्दी ये लोग उसे भूल गए। जैसे कोई बात ही न
हुई हो। कितने दिन हुए अभी उसे गये? और यहाँ दन ब्याह ठन
गया। खुशियाँ मनाई जाएँगी। बाजे बजेंगे। कितनी स्वार्थी है यह
दुनिया! अपने सुख के आगे दूसरे के दुख की यहाँ किसे परवाह है?

बिलरा जब पुरोहित को साथ लिये लौटा तो दरवाजे पर हंगामा
मचा था। बुलावे पर बिरादरी के लोग इकट्ठे तो हुए थे, लेकिन बिना
सब-कुछ जाने-बूझे वे शामिल होने से न कर रहे थे। कहाँ की लड़की
है, उसके माँ-बाप का खून कैसा है, हड्डी कैसी है? वह रात को बरेछ
का सामान देकर क्यों चला गया? क्यों नहीं रुका? इस तरह कहीं
किसी का तिलक चढ़ता है!

गोपी एक ओर चुप खड़ा था। बूढ़े ही दीवार के सहारे बैठे हुए उनसे बातें कर रहे थे। पण्डितजी को उन्होंने देखा तो बुलाकर पास पड़ी चारपाई पर बैठाकर उन्होंने कहा, "पंडितजी, क्या मैं अन्धा हूँ? अपने मूल-खानदान की फिक्र मुझे नहीं है? आज ये मुझे याद दिलाने आये हैं! मौके की बात है, मटरूसिंह रुक न सका। लड़की उसकी साली है। कई बार कह चुका, समझा चुका, मिन्नत कर चुका, लेकिन इनकी ऐंठ हा नहीं जाती। अपाहिज होकर पड़ा हूँ, तो ये रोब जमाना चाहते हैं। आज ये भूल गए कि हम कौन हैं!"

"बिरादरी के मामले में सब बराबर हैं। आँख से देखकर तो मक्खी नहीं निगली जाएगी। पण्डितजी, आप ही कहिए, शादी है कि कोई ठट्ठा!" एक बोला।

पण्डितजी जानते थे कि किधर का पक्ष लेना इस अवसर पर ठीक है। उन्होंने खाँसकर गम्भीर होकर कहा, "आपका कहना ठीक है। लेकिन भाई, हर मौके के बचाव का विधान भी भगवान् ने बनाया है। आप लोग तो जानते ही हैं कि मौके पर अगर वर बीमार पड़ जाए, बारात के साथ न जा सके, तो लोटे के साथ भी वधू का विवाह सम्पन्न कर दिया जाता है। मौके का बचाव तो निकालना ही पड़ता है। किसी कारण मटरूसिंह न रुक सके तो क्या इसीलिए यह मौका निकल जाने दिया जाएगा? नहीं, ऐसी बात तो रीति के विरुद्ध होगी। मेरी राय तो यही है। पचों की अब जो मर्जी हो!"

बिरादरी वालों में कानाफूसी शुरू हुई। एक बूढ़ा बोला, "पण्डित-जी, आपने जो मौके की बात कही, वह ठीक है। लेकिन यह मौका तो कुछ वैसा नहीं। टाला जा सकता है। लगन तो कहीं अगहन में ही पड़ेगी। चार-पाँच महीने अभी हैं।"

"कैसे टाला जा सकता है? यह धोती, मिठाई, रुपया क्या लौटा दूँ?" बूढ़े गरम हो उठे।

"कई बार ऐसा भी हुआ है," एक दूसरा बोल पड़ा।

"और मैंने उसे जो ज़बान दी है ?" बूढ़े बमक उठे।

"ऐसी कोई हरिश्चन्द्र की जबान नहीं है।" एक तीसरे ने ताना दिया।

बूढ़े के लिए सहना मुश्किल हो गया। वे काँप उठे और गरजकर बोले, "यह बात किसने मुँह से निकाली है ? जरा फिर तो कहे। असली राजपूत बाप का बेटा हुआ तो उसकी जबान न खींच लूँ तो कहना। अबे गोपिया, तू खड़ा-खड़ा मेरा अपमान देख रहा है। ज़रा बता तो उसे कि तेरे बाप को झूठा कहने का क्या नतीजा होता है।"

बिरादरी में एक क्षण को सन्नाटा छा गया। फिर एक कोलाहल-सा मच गया। "यह ज़बान खींचने वाले कौन होते हैं ?...पद आने पर बात कहीं ही जाएगी ! यह सारी बिरादरी का अपमान है...उठो, उठो !......चलो, चलो ! कोई गाली सुनने यहाँ नहीं आया है...टाट पर बैठने वाला हर आदमी बराबर होता है...इनकी क्या मजाल ! उठो, उठो।...चलो..."

पण्डितजी "हाँ, हाँ" करते ही रह गए। लेकिन धोती झाड़-झाड़कर, सब-के-सब उठकर, बौखलाए हुए, आँखें दिखाते वहाँ से चले ही गए। अब तक भरी-भरी, दरवाजे पर खड़ी हुई बूढ़ी को भी, जैसे गुबार निकालने का मौका मिल गया। हाथ चमका-चमकाकर वह बोली, "जाओ, जाओ ! तुम्हारे बिना हमारे बेटे की शादी नहीं रुक जाएगी। पण्डितजी, पूजा की तैयारी कीजिए। इनके आँखें दिखाने से क्या होता है ? होगा कोई घूरा-कलवार इनकी परवाह करने वाला ! यह मानिक के बाप का घराना है, जो अकेले ही हमेशा सौ पर भारी रहा है। क्या समझ रखा है इन्होंने ?"

"सच कहती हो जजमानिन, यह तो सरासर इनका अन्याय है। पुरोहित की बात भी इन्होंने न मानी। इससे आपका क्या बिगड़ जाएगा ? कुछ खर्चा ही बच जाएगा। जिसका कोई नहीं, उसक

भगवान् है, किसी के बिना कहीं किसी का काम अटका है ?" कहकर पंडितजी ने तैयारी शुरू कर दी।

इस तमाशे से सबसे ज्यादा खुशी बिलरा को हुई। इन्हीं कमवख्त बिरादरी वालों के डर से तो छोटी मालकिन की वह हालत हुई। इस बिरादरी का डर न होता तो जितनी बेवाम्रों की जिन्दगी तबाह हुई, सब बच जातीं और ठिकाना पा जातीं। वह खुशी बिलकुल एक प्रतिद्वन्द्वी की जीत की थी। उसे लगा कि यह उसी की जीत हुई।

पण्डितजी को खिला-पिलाकर, बिदा कर, गोपी पीली धोती पहने हुए चौपाल में बैठा सोच रहा था कि चलो, यह भी अच्छा ही हुआ। बिल्ली के भाग से छींका हो टूट गया। रास्ते का एक बड़ा पहाड़ आप ही हट गया···

तभी बिलरा आकर उसके सामने बैठ गया।

गोपी ने उसकी ओर देखकर कहा, "बहुत खुश हो। क्या बात है ?"

"मालिक, तुम्हारी बिरादरी वालों को भागते देखकर आज मुझे बहुत खुशी हुई," हाथों को मलते हुए बिलरा बोला।

"इसमें खुशी की क्या बात है ?" गोपी यों ही बोला।

"वाह, मालिक ! इसमें कोई खुशी की बात ही नहीं है ? इन्हीं के डर से तो छोटी मालकिन निकल गईं। इनका डर न होता तो काहे को वह घर छोड़ती ?" उदास होकर बिलरा बोला।

"हाँ, यह तो तू ठीक ही कहता है," कुछ खोया-सा गोपी बोला।

"तुमको भी बिरादरी वालों का बहुत डर था, मालिक ?"

"हाँ।"

"लेकिन आज तो उनसे तुमने अपना सब नाता तोड़ लिया। पहले ही ऐसा कर लेते मालिक, तो छोटी मालकिन को घर क्यों छोड़ना पड़ता ? पहले ऐसा क्यों न किया मालिक ?" भरे गले से बिलरा बड़े

ही दर्दनाक स्वर में बोला।

गोपी उसके इस सवाल से घबरा गया। उसे क्या मालूम था कि यह नीच, गँवार भी ऐसी समझ की बात कर सकता है? वह बिलकुल अचकचाया-सा उसका मुँह देखने लगा।

बिलरा ही बोला, "जाने कहाँ वह किस हालत में होंगी! उनका बड़ा मोह लगता है मालिक! ऐसी बाछी की तरह वह थीं कि क्या बताऊँ। उनकी याद आती है तो आँखों से लोर टपकने लगता है," और वह रो पड़ा।

गद्‌गद होकर गोपी बोला, "भगवान् तेरे जैसा दिल सबको दे, तेरे जैसा मोह सबको दे! तू दुःख न कर, भगवान् सब अच्छा ही करते हैं। तू चुप रह!"

"मालिक," सिसकता हुआ बिलरा बोला, "जब छोटी मालकिन को देखता था, तो मन में उठता था कि तुम्हारे साथ उनकी कैसी अच्छी जोड़ी होती। मालिक, बिरादरी वालों का डर न होता तो तुम उनके साथ ब्याह कर लेते न?"

गोपी का दिल हिल गया। वह विह्वल-सा होकर बिलरा का हाथ पकड़कर उसकी आँखें पोंछते हुए बोला, "तू बड़ा अच्छा आदमी है, बिलरा। जा, सुबह से तू घर नहीं गया। तेरी औरत खोज रही होगी। भाई से खयका माँग ले।"

सोलह

•

पड़ताल क्या होनी थी, जो होती ! कितनी ही पाँचलियों की तरह यह भी, किसानों को डराने-धमकाने की एक जमींदाराना और अफसरी चाल ही थी। और फिर गंगा मैया की माया कि इस साल पानी हटा तो दो धारें बन गईं—एक इधर और एक उधर, और बीच में धरती निकल आई, दो घाटियों के बीच में पहाड़ी की तरह। यह साल गहरे संघर्ष का था, मटरू जानता था। उसने इसकी पूरी तैयारी भी की थी। अब जो नदी की दो धाराएँ देखीं, तो उसे लगा कि गंगा मैया ने उसके दोनों ओर अपनी विशाल बाँहें फैलाकर उसे अपनी ऐसी रक्षा के घेरे में ले लिया है कि दुश्मन लाख सिर मारकर भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकते।

रेत पर पहले मटरू की झोंपड़ी खड़ी हुई, और देखते-ही-देखते पिछले साल की ही तरह पचासों झोंपड़ियाँ जगमगा उठीं।

जमींदारों ने सोचा था कि इस साल कोई किसान वहाँ न जाएगा, लेकिन जब यह खबर उनके कानों पहुँची, तो वे गलबला उठे। थाना, तहसील, जिले की दौड़-धूप शुरू हो गई। इतने दिन चुप रहकर उन्होंने देख लिया था कि ऐसा चलने से वे पुराने दिन नहीं आने के। अब तो कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा, वरना हमेशा के लिए दीयर हाथ से निकल जाएगा। यह आखिरी बाजी है, हारे तो हार, और जीते तो जीत। जान लड़ाकर इस बार इधर या उधर कर ही लेना है।

मिट्टी तो चिकनी है, लेकिन धरती अभी बहुत गीली है। कहीं-कहीं तो अब तक दलदल ही पड़ा है। सूखने में बड़ी देर लगेगी। दोनों ओर बराबर जोर की धाराएँ हैं। न भी सूखे। बावग का वक्त निकला

जा रहा है। देर से भी बावग के लायक धरती होगी, इसकी उम्मीद न थी। मटरू चिन्ता में पड़ा था। तब किसान चिन्ता में पड़े थे कि क्या किया जाए, कहीं यह साल खाली न चला जाए।

पूजन की पहुँच धरती के बारे में मटरू से कहीं गहरी थी। यों ही देखने के लिए उसने किनारे के पास एक छोटा-सा गढ़ा घेरकर थोड़ा धान का बीया डाल दिया था। पाँच-छः दिन के बाद वहाँ हरियाली नजर आई तो उसने मटरू से कहा, "पाहुन, इस साल धान बोया जाए तो कैसा?"

मटरू ने हँसकर कहा, "अबे, धान क्या आजकल बोया जाता है?"

पूजन ने अपने प्रयोग की बात कह के कहा, "सुना है बंगाल, मद्रास में धान की कई-कई फसलें होती हैं। अब की हमारी धरती भी धान लायक ही मालूम पड़ती है। पानी की कोई कमी नहीं। नमीं महीनों बनी रहेगी। मैं तो कहूँ, पाहुन बोया जाए। ठाले बैठे रहने से कुछ भी करना बेहतर है। नहीं कुछ हुआ तो बीया जाएगा और कहीं हो गया तो एक नई बात मालूम हो जाएगी।"

मटरू उसी क्षण उठ खड़ा हुआ और पूजन के साथ जाकर गढ़े में उगा धान देखा तो उसकी आँखें झपक गईं। कहा, "सच रे, तेरी बात तो ठीक ही मालूम होती है।"

और किसानों से फिर चट राय-बात हुई। पूजन की बात मान ली गई। बोने की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

गोपी से आने के लिए मटरू कह आया था, लेकिन तब से वह एक बार भी न आया। नाव वालों से बराबर सर-समाचार ले-दे जाता है, लेकिन आता नहीं। अगहन सुदी नवमी को लगन है। बारात में दस-पाँच मेहमानों के सिवा कोई न होगा। बिरादरी ने खान-पान बन्द

कर दिया है। किसी बात की चिन्ता नहीं।

एक दिन भाभी ने मटरू से कहा, "भैया, तुमने उससे आने को कहा था न ?"

"हाँ।"

"लेकिन वह तो एक बार भी न आया। तुमसे झूठ तो नहीं कहा था ?"

"झूठ क्यों कहता री ? लेकिन वह आए भी कैसे ?"

"क्यों ?"

"शादी के पहले कोई दूल्हा ससुराल जाता है क्या ?" कहकर मटरू मुस्कराया।

"दुत ! जाओ भैया, तुम तो दिल्लगी करते हो, और यहाँ मन में रात-दिन एक धुकधुकी लगी रहती है···"

"कि कैसा होगा दूल्हा ? भैंसे की तरह काला कि चाँद की तरह गोरा ? एँ ?"

"हाँ, पहली बार देखना है न !"

"तो ?"

"जाने क्या-क्या अभी देखना बदा है भाग में ! तुम लोगों को यह सब तमाशा जाने क्यों अच्छा नहीं लगता···"

"तो यहाँ तो दरवाजे पर गंगा मैया है। कुएँ में डूब मरी होती तो नरक में पड़ती। यहाँ गंगा मैया की गोद में समा जाओगी, तो सीधे बैकुण्ठ पहुँच जाओगी," कहकर मटरू हँसा।

"तुम लोग मुझे ऐसा करने भी तो दो। तुम्हें क्या मालूम है कि जब सोचती हूँ कि वहाँ फिर जाने पर कैसी आफत और विकट दशा में पड़ूँगी, तो मन कितना बेकल हो जाता है। इससे तो मर जाना कहीं आसान है।"

"हूँ। तो फिर वही बात ? तेरे इस भैया के रहते भी तेरी चिन्ता नहीं जाती ? अरी पगली, अब घर बसाने की सोच, एक नयी जिन्दगी

भाभी आकर खड़ी हो गई तो लखना की माँ ने गठरी खोली।
ी के नये-नये गहनों की चमक से आँखें जगमगा उठीं। लखना की
का चेहरा खुशी से उद्दीप्त हो उठा। वह एक-एक को उठाकर
ने लगी। मन की उमंग दबाती हुई भाभी भी झुक गई।

कड़ा, गोड़हरा, हँसली, बाजू और हल्का। एक-एक का एक-एक
ोड़ा। लखना की माँ ने पूछा, "ये जोड़े क्यों मँगाए ? अच्छा···"

"क्यों ?" बीच ही में मटरू बोल पड़ा, "हमारे घर दो पहनने
वालियाँ हैं न ?"

"भैया," भाभी चीख-सी पड़ी, "मेरे लिए तुमने काहे को
मँगाए ?"

"क्यों, भाई के घर से नंगी ही ससुराल जाएगी क्या ? कोई
देखेगा तो क्या कहेगा ? पगली, यह तू क्यों नहीं समझती कि मेरे
कोई लड़की नहीं है, और अब," कनखी से अपनी औरत की ओर देख-
कर बोला, "होने की कोई उम्मीद भी नहीं। तुमसे ही बेटी की साध
भी पूरी करनी है। इसने न जाने कितनी बार गहने के लिए कहा था।
आज तेरे ही भाग्य से इसके लिए भी आ गए। पसन्द हैं न !"

तभी बाहर से एक किसान ने आकर कहा, "पहलवान भैया, फूल-
चन गिरफ्तार हो गया। बाहर खबर देने एक आदमी आया है।
कहता है···"

खयका अधखाया ही छोड़कर मटरू उठकर बाहर लपका। बाह
बहुत से किसान जमा थे। सबके चेहरे पर परेशानियाँ थीं। पूछने
खबर लाने वाले ने कहा, "फूलचन के बाप ने नाव पर खबर भेजी
कि फूलचन आज दोपहर को गाँव में अपने घर पर ही गिरफ्तार
गया। अपनी बीमार माँ को देखने वह आज सुबह ही घर गया
दोपहर को दस पुलिस वाले आकर उसे गिरफ्तार कर ले गए। वे
को भी खोज रहे थे। कहते थे, सौ आदमियों पर वारण्ट है, दी
मामले में। जमींदारों ने फौजदारी चलाई है।"

सुनकर सब सन्नाटे में आ गए। जमींदार कुछ करने वाले हैं, यह सबको मालूम था, लेकिन अचानक इस तरह वारण्ट कट जाएगा, यह कौन समझता था! सोचकर मटरू ने कहा, "सब नावें इस पार मँगा लो। उधर के तीर पर एक भी नाव न रहे, और उधर उस पार जाने वाली नावों को भी तैयार रखो। सबसे कह दो, कोई गाँव में न जाए। सब लाठियाँ तैयार रखो। सबसे कह दो, होशियार रहें। एक नाव सिसवन बन के सामने उधर से खबर लाने के लिए भेज दो। हाँ, फूलचन के बाल-बच्चे कहाँ हैं?"

"यहीं अपनी झोंपड़ी में हैं। खबर पाकर सब रो रहे हैं," एक ने बताया।

"चलो उन्हें सँभालो," आगे बढ़ता हुआ मटरू बोला, "सिसवन बन कौन जा रहा है? कोई होशियार आदमी जाए। गाँवों के अपने आदमियों को भी तैयारी करने की ताकीद करनी होगी। ये जमींदार अब खून-खराबी पर उतर आए हैं।"

सत्रह

•

दूसरे दिन झटपट एक-एक करके सब झोंपड़ियाँ उठाकर झाऊँ के जंगल में खड़ी कर दी गईं। तीरों पर जवानों का पहरा बैठा दिया गया। खबर मिलती रही कि पुलिस वाले रोज गाँवों का एक चक्कर लगाया करते हैं, लेकिन दीयर के किसानों को यह मालूम था कि जब तक वह यहाँ हैं, कोई उनका बाल-बाँका नहीं कर सकता। इस किले

में आकर कोई दुश्मन अपनी जान बचाकर नहीं जा सकता। सब चौकन्ने हो गए थे। कोई अपने तीरवाही के गाँव में नहीं जाता। जरूरत की चीजें इधर से पार कर बिहार के कस्बे से लाई जाती हैं। एक ओर से जीवन की डोर कटकर दूसरी ओर जा जुड़ी है। सब ठीक चल रहा है। कोई गम नहीं। धाराएँ वैसे ही बह रही हैं। धान वैसे ही लहलहा रहे हैं। हवा वैसे ही चल रही है।

लेकिन इधर मटरू कुछ परेशान-सा है। जिन्दगी में कभी भी परेशान न होने वाला मटरू आज परेशान है। बहन की शादी है। कहीं ऐन मौके पर विघ्न न पड़ जाए। फिर कौनसा मुंह वह दिखाएगा अपनी हिरामन को? आजकल गंगा मैया की टेर उसकी बहुत बढ़ गई है। उठते-बैठते, सोते-जागते, बराबर उसके मुंह से यही निकलता रहता है, "मेरी मैया, यह नाव पार लगा दे! मेरी मैया···"

बहन-बेटी का भार क्या होता है, आज उसे मालूम हो रहा है। न खाना अच्छा लग रहा है, न पीना। औरत और भाभी पूछती हैं, तो रुआँसा होकर कहता है, "जी नहीं होता। सोचता हूँ, मेरी बहन चली जाएगी, तो मेरी यह झोंपड़ी कितनी उदास हो जाएगी!"

"तो जाने क्यों देते हो? रोक लो," औरत परिहास करती।

"क्या बताऊँ? रघुकुल रीति सदा चलि आई···"और गुनगुनाता हुआ वह वहाँ से हट जाता है। बाहर आकर फिर वही टेर लगाने लगता है। "मेरी मैया, यह नाव पार लगा दे। मेरी मैया····"

मैया ने बेटे की पुकार सुन ली थी। सकुशल वह दिन आ पहुँचा। शाम के धुंधलके के झुकते ही सिलबन बन के घाट पर बारात उतरी। नाऊ, पण्डित, वर और पाँच बाराती। न बाजा, न गाजा। जैसे पार उतरने वाले राही हों।

फिर भी, उस दिन रात-भर झाऊँ के जंगलों में हवा शहनाई

बजाती रही। गंगा मैया की लहरें किसानिनों के गले से गला मिलाकर मंगल के गीत रात-भर गाती रहीं। किसानों की टिमकी बजी। बिरहों की बहारें लहराईं। रात-भर मधु की स्रोत टपकती रही, टप, टप।

जंगल की नन्ही-नन्ही चिड़ियों और नदी के बड़े-बड़े पंछियों ने एक साथ मिलकर जब प्रभाती शुरू की, तो विदाई की तैयारियाँ होने लगीं।

दुलहन भाभी से लिपटकर वैसे ही रोई, जैसे एक दिन वह अपनी माँ से लिपटकर रोई थी। लखना और नन्हे को वैसे ही चूमा-चाटा जैसे एक दिन अपने भतीजों को चूमा-चाटा था। फिर पूजन की भेंट ली। मटरू इन्तजाम में भागा-भागा फिर रहा था। न जाने क्यों उसे बड़ी घबराहट-सी हो रही थी। बहन उसके पाँव पकड़कर रोयेगी तो वह क्या करेगा, उसकी समझ में न आ रहा था।

आखिर सवारी दरवाजे पर आ लगी, विदा की घड़ी आन पहुँची। बहन भेंट के लिए भैया का इन्तजार कर रही है। अब भागकर कहाँ जा सकता है!

दिल कड़ा करके वह खड़ा हो गया। दुलहन पाँव पकड़कर रोने लगी। लखना की माँ ने उसे उठाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह पाँव छोड़ने ही पर न आती। मटरू बुत बना खड़ा था। रुदन की किन मंजिलों से चुप-चुप वह गुजर रहा था, यह कौन बताए!

आखिर जब वह उसे उठाने के लिए झुका तो दो पत्थर के आँसू टपक पड़े। उसकी बाँहों में खड़ी, उसके कन्धे पर सिर डाल दुलहन ने कहा, "तुम साथ चलोगे न?"

"यह क्या कहती है बहन?" लखना की माँ ने चिन्तित होकर कहा, "इस पर वारण्ट है।"

मटरू ने उसका मुँह हाथ से बन्द करना चाहा, लेकिन वह कह ही गई।

दुलहन ने सिर उठाकर जाने किस व्याकुलता पर काबू पाकर कहा,

"नहीं भैया, तुम्हारे जाने की जरूरत नहीं, लेकिन बहन को भूल न जाना। माँ-बाप, भाई सबको खोकर तुम्हें पाया है, तुम भी भुला दोगे तो मैं कैसे जिऊँगी ?"

"नहीं, नहीं, मेरी हिरामन, तुझे भुलाकर मैं कैसे रह सकूँगा, तू हिम्मत से काम लेना। मैं……" और वह ज्यादा कुछ कह सकने में असमर्थ हो हट गया।

तीर तक उदास मटरू गोपी को समझाता रहा। गोपी ने उसे आश्वासन दिया कि चिन्ता की कोई बात नहीं, वह हर हद तक तैयार है। लेकिन मटरू को सन्तोष कहाँ ! उसके कानों में तो वही बात गूँज रही थी, "तुम पर जितना विश्वास होता है, उतना उस पर नहीं !"

नाव चली जा रही है, बाल-बच्चों, किसानों-किसानिनों के साथ खड़ा मटरू ताक रहा है; उसकी उदास आँखें जैसे उस पार, दूर एक तूफान को आता देख रही हैं, जो उसकी बहन का स्वागत करने वाला है। ओह, वह साथ क्यों न गया !

घर आकर उदास मटरू चटाई पर पड़ रहा। उदास धूप फैल गई है। दूध के मटके एक ओर पड़े हैं। उन पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, थकी गृहिणी को जैसे कोई होश ही नहीं। सचमुच घर कितना उदास हो गया है ! मटरू का दिल भरा-भरा-सा है। खूब रोने को जी चाहता है। एक ही कलक मन को मथ रही है—वह बहन के साथ क्यों न गया। जाने उस पर क्या बीते !

काफी देर के बाद गृहिणी उठी। इस तरह बैठे रहने से काम कैसे चलेगा ? सारा काम-धाम पड़ा हुआ है। मर्द के पास आकर बोली, "जाओ, नहा-धो आओ। इस तरह कब तक पड़े रहोगे ?"

"नहा-धो लूँगा," मटरू ने अनमने ढंग से कहा, "मुझे उसके

साथ जाना चाहिए था। जाने बेचारी पर क्या पड़े!"

"गोपी क्या मर्द नहीं है?" तुनककर औरत बोली, "तुम तो नाहक सोच-फिकिर कर रहे हो। उठो!" कहकर वह उसकी देह पर से चादर खींचने लगी।

"मर्द है तो क्या हुआ? आखिर माँ-बाप का लेहाज तो आदमी को करना ही पड़ता है। मुझे डर लगता है कि कहीं उसने कमजोरी दिखाई तो मेरी हिरामन का क्या होगा। मुझे जाना चाहिए था लखना की माँ!"

"कुछ होगा तो खबर मिलेगी न। इस वक्त तो तुम उठो। देखो, कितनी देर हुई। घर का सारा काम अभी उसी तरह पड़ा है," कहकर वह अन्दर से धोती दातून ला उनके हाथों में थमाती बोली, "जाओ, जल्दी नहा-धो आओ। मन हलका हो जाएगा।"

किसी तरह कसमसाकर मटरू उठा और तीर की ओर चल पड़ा।

आज गंगा-स्नान में वह आनन्द न आया। जिन्दगी में इस तरह का यह पहला अनुभव था। उसे लग रहा था कि आज गंगा मैया भी उदास है। उसकी धारा में वह ज़ोर नहीं, उसकी लहरों में वह थिरकन नहीं, उसमें तैरती मछलियों में चपलता नहीं। कहीं कोई तार ढीला हो गया है; साज बेसाज हो गया है।

'तुम्हारे पास रहकर यहाँ कोई डर-भय नहीं लगता···जब सोचती हूँ कि वहाँ फिर जाने पर कैसी आफत और विकट दशा में पड़ूँगी, तो मन कितना बेकल हो जाता है···तुम भी मेरे साथ वहाँ कुछ दिनों के लिए चलोगे न? तुम पर जितना विश्वास होता है, उतना उस पर नहीं······' मटरू के मन में ये बातें गूँज-गूँज जाती हैं और उसे लगता है कि उसने जान-बूझकर ही अपनी हिरामन को उन विकट परिस्थितियों में अकेली झोंक दिया है। और वह मन-ही-मन तड़प उठता है। क्यों, क्यों नहीं वह साथ गया? क्यों उसे अकेली छोड़ दिया? क्यों उसके साथ विश्वासघात किया?

वारण्ट ! यहाँ का उसका कर्तव्य ! कहीं उसे कुछ हो गया होता, यहाँ उसके साथियों की क्या हालत होती ? साथी उसके अब पहले की तरह बेवकूफ नहीं हैं। उन्हें अपने पाँवों पर खड़ा होना सीखना चाहिए। मटरू आखिर हमेशा उनके साथ कैसे बना रहेगा ? मटरू के जीवन में पहले एक ही कर्तव्य था, लेकिन अब तो दो हो गए हैं। उसे अपने दोनों कर्तव्यों को निभाना है। दोनों मोर्चों पर बराबर के दुश्मन हैं। एक के जालिम पंजों में पड़कर कितने ही किसान तड़प रहे हैं और दूसरे के खूनी जबड़े में पड़कर एक बहन कराह रही है। एक नहीं, अनेक, अनेक। उनके लिए भी रास्ता निकालना चाहिए।

घाट पर बैठा खोया-खोया मटरू जाने ऐसी ही क्या-क्या ऊल-जलूल बातें सोचे जा रहा था, कि पूजन ने आकर कहा, "बहना तुम्हें बुला रही है। चलो, जल्दी करो। कब के आए यहाँ यों बैठे हो," कहकर मटरू के सामने पड़ी भीगी धोती उसने उठा ली।

चलते-चलते मटरू ने कहा, "पूजन, एक बात पूछूँ ?"

"कहो।"

"अगर मैं न रहा पूजन, तो तुम लोग सब सँभाल लोगे ?"

"लेकिन तुम रहोगे कैसे नहीं ? गंगा मैया तुमसे छोड़ी जा सकती हैं ?"

"नहीं, छोड़ी कैसे जा सकती हैं ! लेकिन मान लो, न रहूँ ?"

"वाह ! यह कैसे मान लें ?"

"अरे, उस दफे नहीं हुआ था। मैं क्या 'गंगा मैया' को छोड़ सकता था ? लेकिन संजोग कि पुलिस वालों की पकड़ में आ गया। उसी तरह......"

"अब की यह कैसे हो सकता है पाहुन ? तब तुम अकेले थे। आज सैकड़ों जवान तुम पर जान देने को तैयार हैं। भले ही हमारी जान चली जाए, लेकिन तुम्हारा बाल-बाँका न होने देंगे ! पाहुन, तुम धरती की जान हो !"

"वो तो है, लेकिन सबोत।"

"नहीं, नहीं, पाहुन, ऐसा सबोत [illegible]"

"ओह, तुमसे तो बात करना मुश्किल है पूजन ! [illegible], मैं मर ही गया ?"

"पाहुन !" पूजन चीख पड़ा, "ऐसी बात मुँह से क्यों निकालते हो ?"

"पूजन," गम्भीर विह्वलता के स्वर में [illegible] "[illegible] का, उनकी धरती का, इन खेतों का, इस हवा और [illegible], इन [illegible] और इन किनारों का और अपने सब साथियों का मोह मुझे अपने बाल-बच्चों की तरह, बल्कि उससे भी कहीं ज़्यादा है। [illegible] कि कहीं मैं न रहा तो अन्यायी ज़मींदारों के पाँव इन पर फिर तो नहीं जम जाएँगे ?"

"नहीं पाहुन, नहीं ! अगर यही बात है तो तुम जो कि तुम्हारे साथी अपने ख़ून की आख़िरी बूँद तक से इनकी रक्षा करेंगे। जिस तरह गुज़रा ज़माना फिर वापस नहीं आता, उसी तरह ज़मींदारों के उखड़े पैर यहाँ फिर कभी न जम पाएँगे। हमारा ज़ोर दिन-दिन बढ़ता आ रहा है। हमारे साथी बढ़ते आ रहे हैं। ज़माना आगे बढ़ रहा है। नहीं, पाहुन, वैसा कभी न होगा ! यहाँ का आज हर किसान मटरू बनने की तमन्ना रखता है। तुम इसकी चिन्ता न करो पाहुन !"

"शाबाश !" मटरू ने उसकी पीठ ठोककर कहा, "आज मैं ख़ुश हूँ, बहुत ख़ुश ! पूजन, ऐसा ही होना चाहिए, ऐसा ही !"

और सचमुच उदासी छँट गई। चेहरा पहले ही की तरह दमक उठा। आँखें चमक उठीं।

लेकिन जैसे ही झोंपड़ी में घुसा, वह पहले ही की तरह फिर उदास हो गया।

औरत ने चौके में चटाई डाली। लोटा भरकर पानी रखा। फिर बोली, "आओ, रोटी खा लो।"

बैठकर मटरू ने पहला कौर तोड़ते हुए कहा, "जो नहीं [illegible]।"

"जी कैसे करे ! तेरी हिरामन जो चली गई।"

"उँहूँ, उसके जाने की चिन्ता नहीं।"

"फिर ?"

"जाने उस पर क्या बीते ! अब तो पहुँच गई होगी।"

"बीतेगी क्या ? हम तुम राजी, क्या करेगा काजी ? गोपी तैयार है तो उसका कौन क्या बिगाड़ लेगा ?"

"सो तो है रे, लेकिन हमारा समाज बड़ा जालिम है। कितने ही गोपियों को इसने जिन्दा चबा डाला है। और गोपी कुछ कमजोर भी। वैसा न होता तो यह कहानी इतनी लम्बी क्यों होती ? वह तो संजोग कहो कि गोपी कुएँ पर जगा पड़ा था, नहीं तो कहानी खत्म होने में देर ही क्या थी ? सोचता हूँ कि जिस वक्त गोपी की माँ उसकी भाभी को जली-कटी सुना रही थी, अगर उसी वक्त हिम्मत करके आगे बढ़कर गोपी अपनी भाभी का हाथ थाम लेता तो कौन उसका क्या कर लेता ? लेकिन वह वैसा न कर सका। औरत का मर्द पर से एक बार विश्वास हट जाता है तो फिर मुश्किल से जमता है। कहती थी न वह, 'तुम पर जितना विश्वास होता है, उतना उस पर नहीं।'"

"तो तुम्हारे ही विश्वास पर उसकी जिन्दगी पार लगेगी आखिर…"

"अरे, सो तो है री, कौन किसकी जिन्दगी पार लगा देता है ! वक्त की बात होती है। उसे इस वक्त मेरे सहारे की जरूरत थी। दो चार दिन में आंधी गुजर जाती तो सब आप ही ठीक हो जाता…"

"सब ठीक हो जाएगा। रोटी खाओ," छिपली में गरम दूध ढालती हुई औरत ने बात खत्म कर दी, "जो हुआ हमसे, किया न ? कौन इतना गैर के लिए करता है ?"

"तू औरत है न, लखना की माँ," दर्द-भरे स्वर में मटरू बोला, "मेरे और मेरे बच्चों के सिवा तेरा कोई अपना नहीं। मैं किसी को अपना बना लूं तो ऊपर से तू भी उसे अपना कह देगी। मेरी मंशा

हाँ तो तेरी मंशा है। तेरा दिल इतना बड़ा, इतना आज़ाद कहाँ कि मेरी मंशा के खिलाफ भी तू अपनी मंशा से किसी और को अपना बना ले। गोरी को भाभी जब तक नहीं रही तू उसे पुकारे रहा, क्योंकि यही मेरी इच्छा थी। लेकिन मन तेरा अन्दर से उसे अपना न बना सका। लखना की माँ, मान ले कि कहीं तू भाड़ में फँस जाए, और तेरी मदद को मैं न आऊँ तो?"

"चुप भी रहो, खा लो, फिर फेंकना न बैठकर!"

जी न होते भी मटरू ने भरपेट खाया। औरत का इसमें कोई दोष नहीं। वह जानता है, जैसी वह बनी है, वैसा ही व्यवहार तो करेगी। न खाकर उसका मन मैला क्यों करे!

चटाई बाहर धूप में बिछाकर, हुक्का ताज़ा कर औरत ने रख दिया। मटरू गुड़गुड़ाता रहा और सोचता रहा। सोचते-सोचते ऊँघने लगा। रात-भर का जागा था। हुक्का एक ओर टिकाकर फैल गया और थोड़ी देर में नींद में डूब गया। औरत ने चादर लाकर ओढ़ा दी।

शाम ढल गई।

कहीं कोई आफ़त का मारा अकेला तोता बड़े दर्दनाक स्वर में टें-टें चीखता हुआ मटरू के सिर पर से उड़ा तो मटरू की नींद खुल गई। जाने किस सपने से चौंककर वह पुकार उठा, "पूजन, पूजन!"

दौड़ते हुए आकर पूजन ने कहा, "तूफ़ान आ रहा है पाहुन, उत्तर का आसमान काला हो गया है।"

तोते की टें-टें की आवाज़ अब भी आसमान में गूँज रही थी। मटरू चादर फेंककर खड़ा हो गया। फिर इधर-उधर आँखें फैलाकर देखता बोला, "पूजन, मेरी हिरामन तूफ़ान में फँस गई है। सुन रहा है उसका चीत्कार!" और उसने सिवान आड़ की ओर पैर बढ़ा दिए।

दरवाजे पर खड़ी औरत चिल्लाई, "कहाँ जा रहे हो...

पूजन चीखा, "इस तूफान में कहाँ जा रहे हो ?"

मुड़कर मटरू ने कहा, "अभी लौट आऊँगा।"

तूफान आ गया, गंगा मैया की लहरें चीख उठीं, हवा सूँ-सूँ कर उठी। जंगल सिर धुनने लगा। धरती हिलने लगी। झोंपड़ियाँ अब गिरीं, अब गिरीं।

घाट पर नाव वाले से मटरू ने कहा, "खोलो, जल्दी करो !"

"इस तूफान में, पहलवान भैया ? यह क्या कह रहे हो ?" नाव-वाला आँख-मुँह फाड़कर बोला।

"कोई हर्ज नहीं। अपनी मैया की ही तो लहरें हैं ! उठाओ लग्गी। मुझे जल्दी है। लाओ, मुझे दो ! तुम चुपचाप बैठे रहो।" और मटरू ने नाव खोल दी। देखते-देखते चिघाड़ती लहरों में नाव अदृश्य-सी हो गई।

गोपी के दरवाजे पर गोजी धम से जब बोली, तो तूफान गुज़र चुका था। बाद का सन्नाटा घर पर छाया था। हमेशा की तरह बूढ़े ने आवाज न दी। मटरू को खुद ही आगे बढ़ना पड़ा। उसने बूढ़े के पाँव छूकर कहा, "पाँव लागो, बाबूजी।"

बाबूजी चुप !

"नाराज हो क्या, बाबूजी ? नयी बहू पसन्द नहीं आई क्या ? व... क्या बिलकुल तुम्हारी बड़ी बहू की ही तरह नहीं है ? मैंने क... था न..."

"हट जाव मेरे सामने से !" बूढ़ी हड्डी चटख उठी।

"हट कैसे जाएँ ? रिश्तेदारी की है कि कोई दिल्लगी है !"

"मेरी नाम-हँसाई करके जले पर नमक छिड़कने आया है। ... तो पिट गया गाँव-भर में ! क्या बाकी रह गया ! मुझे पहले ही

न मार डाला, चाण्डालो !"

"ऐसा क्यों कहते हो, बाबूजी ? तुम मेरी उमर भी लेकर जियो ! उस दिन तुम्हीं ने तो कहा था, 'उसकी याद आती है, तो कलेजा फटने लगता है···माँ-बाप के लिए क्या बेटे से बढ़कर बिरादरी है···बिरादरी वाले क्या हमें खाना देंगे···लेकिन हमें क्या मालूम था···' अब तो हो गया मालूम ? अब तो कलेजा नहीं फटना चाहिए। लेकिन यहाँ तो···"

"चुप रह ! मैं क्या समझता था कि तुम सब ऐसे पागल···"

मटरू हँसा। बोला, "पागल तुम और तुम्हारा समाज है बाबूजी ! लेकिन मुश्किल तो यह है कि जो उसका अन्धेरखाता और पागलपन खत्म करके एक गऊ की जान बचाने के लिए आगे बढ़ता है, उसे ही वह पागल कहता है।"

"यह सब जाकर तू उसीसे कह। मेरे सामने से हट जा !"

"कहाँ है वह ?"

"चौपाल में।"

"चौपाल में ? घर में नहीं ?"

"मेरे जीते-जी वह घर में पाँव नहीं रख सकता !"

"तो उसका एक घर और भी है। उन्हें चौपाल में रहने की जरूरत नहीं। उन्हें मैं अभी···"

"बाप-बेटे के झगड़े में तू क्यों पड़ता है ! तू जाता क्यों नहीं ?"

"यह बाप-बेटे का ही झगड़ा नहीं है। यह पूरे समाज और उसकी लाखों विधवाओं का झगड़ा है। इसके साथ मेरी बहन की जिन्दगी का वास्ता है। मैं उन्हें···"

"वह मेरा बेटा है···"

"नहीं, जिस बेटे को तुमने घर से निकाल दिया···"

"अरे यह क्या शोर मचा रखा है ?" बुढ़ी चीखती हुई बाहर आ गई।

"छाती पर मूँग दलने मटरू आया है," बूढ़े ने करवट लेकर कहा।

"गाँव-भर थू-थू-करा दिया। अब क्या बाकी है ?" बूढ़ी ने हाथ चमकाकर कहा।

"उन्हें लिवाने आया हूँ," मटरू ने जोर देकर कहा।

"तू कौन होता है उन्हें लिवा जाने वाला ! उनके माँ-बाप क्या मर गए हैं ?" बूढ़ी ने उसके मुँह पर थप्पड़ उलाते हुए कहा।

"आज मालूम हुआ कि मर गए हैं। नहीं तो वे घर से निकाल-कर चौपाल में नहीं डाले जाते।"

"यह तुझसे किसने कहा ?" बूढ़ी ने शान्त होकर कहा।

"बाबूजी···"

"इनकी मति को तुम क्या लिये फिरते हो ? इधर आओ।" कह-कर बूढ़ी उसका हाथ पकड़कर घर के अन्दर ले जाकर फुसफुसाकर बोली, "देखकर मक्खी नहीं निगली जाती। क्या करते, टोले-मोहल्ले, गाँव-गोंएड़े के सब-के-सब कीचड़ उछालने लगे तो बुढ़ऊ ने उन्हें चौपाल में कर दिया। मैंने बहुत सहा। जब सहा न गया तो मैं भी उघटा-पुरान लेकर बैठ गई। इसी गाँव में मेरे बाल सफेद हुए हैं। किसी का कुछ छिपा नहीं है मुझसे। जब झाड़ने लगी तो सब दुम दबाकर भाग गए। तुम्हीं कहो, किसी चमार-डोमिन से मेरी बहू [ही खराब है ? डंके की चोट पर उसने व्याह किया है। शोहदों, घठियों की तरह चोरी-लुक्के तो अपना मुँह काला नहीं किया। माना कि उसने बुरा किया, लेकिन पागल बनकर कर ही डाला, तो क्या उसका सिर उतार लिया जाए ? बेटा ही तो है ! लाख बुरा उसका माफ किया तो एक और सही। अपने सड़े हाथ को कोई काटकर तो नहीं फेंक देता। भगवान् ने जो माला गले में डाल दी, उसे उतारकर कैसे फेंक दूं ? बेटा, उन्हें खुद जाकर मैं घर में लाई हूँ। उनका घर है। कौन उन्हें निकाल सकता है ? हम बूढ़ों का क्या ठिकाना ! आज हैं, कल नहीं। उन्हें तो भोगने को अभी सारी जिन्दगी पड़ी है। जैसे चाहें, रहें···तू

खबका खाएगा। रसियाव-पूरी पकी है रे।"

मटरू ने झुककर बूढ़ी के पैर छू लिए। गद्गद् होकर कहा, "माई, तू कितनी अच्छी है! वह बाबूजी तो..."

"ताजा गुस्सा है। सब ठीक हो जाएगा। बाप बेटे से कब तक नाराज रह सकता है!...खाएगा? हाथ-पैर धो न?"

"वे कहाँ हैं?" मटरू ने बूढ़ी के कान में कहा।

बूढ़ी ने मुस्कराकर उसके कान में कुछ कहा, तो मटरू भी मुस्करा पड़ा। "चल चौके में," आगे बढ़ती हुई बूढ़ी बोली, "खा ले।"

"अब कैसे खाऊँ? वह मेरी छोटी बहन है न! उसका धन...मैं अब चलूँगा। गंगा मैया पुकार रही है। सब परेशान होंगे।"

तभी बगल की कोठरी का दरवाजा खुला और खुशी की दो मूरतों ने निकलकर मटरू के दोनों पैर पकड़ लिए।

गद्गद् होकर मटरू ने कहा, "गंगा मैया तेरा सुहाग अमर करे, मेरी हिरामन!"

खड़ी होकर, घूँघट में सिर झुकाए हिरामन बोली, जैसे होंठों से लाज टपके, "गंगा मैया को मैंने चुनरी मानी थी भैया! भाभी से कह देना, चढ़ा देगी।"